राष्ट्रीय छात्रशक्ति

शिक्षा क्षेत्र का प्रतिनिधि मासिक
वर्ष 1 अंक 11 अप्रैल-मई 1979

सम्पादक
अरुण जेटली

सह सम्पादक
राजकुमार शर्मा

व्यवस्था कार्यालय
16/3676 हरध्यान सिंह मार्ग
करोल बाग, नई दिल्ली-5

कार्यालय
ई-265 नारायण विहार
नई दिल्ली

शुल्क की दर
वार्षिक : 10 रु०
त्रिवार्षिक : 25 रु०
आजीवन : 100 रु०

मत

अरुण जेटली

संघ पर प्रतिबन्ध क्यों ?

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के विरोध में श्री मधुलिमये व श्री राजनारायण के नेतृत्व में अभियान चल रहा है। संघ से सम्बन्ध रखने वाले मंत्रियों को निकाला जाए, शाखाओं पर प्रतिबन्ध लगे—ऐसी मांग इस अभियान से उभर रही है। संघ से असहमति रखने का अधिकार श्री राजनारायण व उनके समर्थकों को है। उनके इस अधिकार को नकारा नहीं जा सकता। लेकिन मौलिक प्रश्न तो यह उठता है कि क्या लोकतंत्र में किसी भी संगठन पर प्रतिबन्ध लगाने की मांग में कुछ नैतिकता है ?

संविधान के निर्माताओं ने धारा १९ में संगठन बनाने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को दिया था। धारा १९ में यह भी कहा गया है कि अगर सरकार उचित समझे तो Reasonable Restrictions किसी संगठन पर लगा सकती है—लेकिन किसी प्रकार के भी प्रतिबन्ध से पूर्व प्रशासन को ऐसे उचित कारण बताने पड़ेंगे जिनकी वजह से किसी भी संगठन के विरुद्ध कार्यवाही ठीक मानी गई है। यह बहुत स्पष्ट है कि बिना किसी जाँच के और बिना कारण बताएँ किसी संगठन पर प्रतिबन्ध माँगना अवैध और अनैतिक है। केरल, कर्नाटक, और उत्तर प्रदेश के प्रशासनों द्वारा संघ पर एक प्रतिबन्ध लगाने का प्रयास संविधान का स्पष्टतः उल्लंघन है।

मोयनिहन का आरोप

अमेरिका के भूतपूर्व राजदूत ने हाल में यह आरोप लगाया कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी को सी. आई. ए. द्वारा देश में राजनीति के लिए पैसा मिला था। यह स्मरण होगा कि 1959-60 में जब श्रीमती इन्दिरा गाँधी कांग्रेस की अध्यक्षा थीं तो उन्होंने पण्डित नेहरू के जबरदस्त विरोध के बावजूद भी केरल में नम्बूदरीपाद मंत्रिमण्डल को बरखास्त करवाया था। उस समय अमरीका के दृष्टिकोण से श्रीमती गाँधी एक उचित मोहरा थीं। शायद यह पैसा श्रीमती गाँधी को तब ही मिला होगा।

यह केवल एक उदाहरण है। देश की भीतरी राजनीति में विदेशी पैसों का आना प्रगतिशील देशों के लिए एक बड़ी समस्या बन गया है। हाल ही में संसद में श्री मोहन धारिया और श्री भूपेश गुप्ता के बीच बहस हो गई थी—जब श्री भूपेश गुप्ता ने श्री धारिया के विरुद्ध विशेषाधिकार समिति को एक मामला भेजने की धमकी दी तो श्री धारिया ने उसका स्वागत किया। श्री धारिया ने कहा कि बड़ी खुशी से वह विशेषाधिकार समिति के सामने आकर सबूत पेश करेंगे कि भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी को रूस से कितना पैसा मिलता है। भूपेश गुप्ता ने उसी समय अपनी धमकी वापिस ले ली। अगर श्रीमती गाँधी के हिसाब से श्री मोयनिहन का आरोप गलत है। तो उनको अदालत में श्री मोयनिहन के विरुद्ध मुकदमा डालना चाहिए पर वह ऐसा नहीं करेंगी। ऐसा उन्होंने किया तो श्री मोयनिहन कहीं अदालत में सबूत न पेश कर दें।

परीक्षाओं का बहिष्कार

देश के कोने-कोने में शिक्षा की सुविधाएँ पहुँचे—ऐसी मांग हमारी रही है। सरकार करोड़ों रुपये का व्यय करके देश की जन-संख्या को शिक्षित करने का प्रयास करती है। यह भी माना गया है कि समाज के चरित्र को मोड़कर एक विशेष दिशा देने में शिक्षा का एक दायित्व है। पिछले कई सालों से शिक्षा क्षेत्र में परीक्षाओं को रोकने का प्रयास चला है। छात्र कई स्थानों में परीक्षाओं में चोरी करने पर उतर आते हैं और परीक्षाएँ बेमतलब हो जाती हैं। अध्यापक व कर्मचारी अपनी माँगों को मनवाने के लिए परीक्षाओं के बहिष्कार का नारा देते हैं। स्थान-स्थान पर परीक्षाओं में रुकावट आती है। यह स्वयं शिक्षा समुदाय का गैर-जिम्मेदाराना है। छात्र व अध्यापकों को अपनी जायज मांगें मनवाने के लिए आन्दोलन करने का हक है—लेकिन आन्दोलन के सम्बन्ध में उनको अपना "कोड आफ कन्डक्ट" तय करना होगा। इस विषय में आम सहमति पर पहुँचना होगा कि आन्दोलन के नाम पर परीक्षाओं में रुकावट न पैदा हो।

सार्वजनिक जीवन में विदेशी हस्तक्षेप पर श्वेत-पत्र प्रकाशित करो

—अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के राष्ट्रीय महामंत्री श्री महेश शर्मा की मांग

अमेरिका के वरिष्ठ राजनेता एवं भारत में भूतपूर्व राजदूत सीनेटर मोयनिहन द्वारा श्रीमती इन्दिरा गाँधी और उनकी पार्टी पर सी. आई. ए. से दो बार धन प्राप्त करने के सार्वजनिक आरोप ने भारतीय राजनीति और जनजीवन में एक खलबली उत्पन्न कर दी है। आश्चर्य की बात यह है कि श्रीमती गाँधी और उनके साथियों ने स्वयं को जनता की दृष्टि में निर्दोष सिद्ध करने के लिए श्री मोयनिहन पर छिछले ढंग से आरोप लगाकर अपना बचाव प्रारम्भ कर दिया है। वस्तुतः यह इतना गम्भीर मामला है कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत की परम्परागत राजनीतिक शैली में मोयनहिन को गालियाँ देकर जनता के मन में राजनेताओं की ईमानदारी के प्रति विश्वास पैदा नहीं किया जा सकता। श्री मोयनिहन का यह रहस्योद्घाटन गलत उद्देश्य से हो सकता है, लेकिन इसने भारतीय राजनीति की एक अत्यन्त गम्भीर विकृति को उजागर किया है।

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद यह गहराई के साथ महसूस करती है कि भारतीय राजनीति में विदेशी शक्तियों का व्यापक हस्तक्षेप अनेक रूप में है, अबाधित रूप से जारी है और अनेक रूपों में बढ़ रहा है। कई वर्ष पूर्व सी. बी. आई. द्वारा इस विषय पर हुई जाँच में अनेक ऐसे गम्भीर तथ्य सामने आये बताये जाते है लेकिन जनहित के नाम पर उस रिपोर्ट को तत्कालीन सरकार द्वारा दबाया गया। यह एक कटु सत्य है कि मात्र श्रीमती गाधी और उनके सहयोगी ही नहीं भारतीय राजनीतिक जीवन में अनेक ऐसे चरित्र है जिनके बारे में जनमानस में इस दृष्टि से शंकाए हैं, ऐसे चरित्र प्रायः सभी प्रमुख दलों में हो सकते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय राजनीति को विदेशी शक्तियों के हाथ का खिलौना बनने से रोकने के लिए कुछ प्रभावी कदम उठाये जायें। देश की जनता को यह जानने का पूरा अधिकार है कि कौन से राजनेताओं एवं समूहों को कौन सी शक्तियां किन रूपों में मदद करती रही हैं। यह विषय केवल आरोप-प्रत्यारोप का नहीं हो सकता, यह राष्ट्रीय सम्मान और सुरक्षा का प्रश्न है जिसको उचित गम्भीरता से न लेना राष्ट्रीय हितों के विरुद्ध होगा। अगर सत्ताधारी नेता इस दुश्चक्र से मुक्त हैं, तो उन्हें ऐसा श्वेत-पत्र तैयार करने में संकोच नहीं होना चाहिए।

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद केंद्र सरकार से दृढ़तापूर्वक यह मांग करती है कि भारतीय सार्वजनिक जीवन में विदेशी हस्तक्षेप की सम्पूर्णता एवं गहराई के साथ छानबीन की जाये और इस विषय पर शीघ्र ही ऐक कदम उठाकर जनता का विश्वास प्राप्त किया जाये।

Mrs. Gandhi And The C.I.A.

But in 1974, Mrs GANDHI was still making speeches about the ever present danger of subversion by the C.I.A., while I was meeting with the relevant Indian officials about our common interst in China.

In New Delhi I had pressed the Embassy to go back over the whole of our quarter-century in India, to establish just what we had been up to. In the end I was satisfied we had been up to very little. We had twice, but only twice, interfered in Indian politics to the extent of providing money to a political party. Both times it was done in the face of a prospective Communist victory in a state election, once in Kerala and once in West Bengal, where Calcutta is located. **Both times the money was given to the Congress Party, which had asked for it. Once it was given to Mrs. Ganhi herself, who was then a party official.**

Still, as we were no longer giving any money to her, it was understandable that she should wonder just to whom we were giving it. It is not a practice to be encouraged.

Excerpts (Page 41) From
"A DANGEROUS PLACE"
By
Daniel Patrick Moynihan
(Allied Publishers Private Ltd. 1979)

नई शिक्षा नीति : कितनी नई

१. प्रस्तावना

१.१ शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो किसी व्यक्ति को अपनी अन्तः (१) शक्ति पहचानने के योग्य उसकी मानसिक और (२) शारीरिक शक्तियों का विकास करे तथा उसकी सामाजिक एवं (३) नैतिक मूल्यों के प्रति उस की चेतना को प्रोन्नित करे ताकि वह एक भरा-पूरा जीवन व्यतीत कर सके, एक उत्तरदायी नागरिक और समाज का एक उपयोगी सदस्य बन सके। शिक्षा का योगदान देश की विशाल मानव अन्तशक्ति का विकास करना तथा उसे समृद्ध बनाना होना चाहिये जिसके जरिए ही सामाजिक परिवर्तन संभव हो सकता है। यह हमारे समाज के लिए समय के साथ आगे बढ़ने के लिये इस प्रकार सहायक हो कि **समाज अपनी समृद्ध परम्पराओं और सांस्कृतिक विरासत से प्राप्त सर्वोत्तम मूल्यों को खोए बिना आगे बढ़े। शिक्षा की प्रक्रिया का मुख्य लक्ष्य चरित्र-निर्माण और प्रजातंत्र धर्मनिर्पेक्षता और समाजवाद के मूल्यों को प्रोन्नत करना होना चाहिये।** राष्ट्रीय रूप से सम्मत मूलभूत विचारधाराओं और सिद्धान्तों के अनुकूल एक सुसंगत तथा गतिशील शिक्षा पद्धति, जिसमें विविधता की पर्याप्त गुंजायश हो, आवश्यक है क्योंकि इससे हमारे समाज के असन्तुलनों और असमानताओं को दूर करने में सहायता मिलेगी।

१.२ वर्तमान शिक्षा पद्धति का भारतीय वास्तविकताओं के अनुकूल पुनर्गठन किया जाना चाहिये। समुदाय में उपलब्ध सभी स्रोतों का उपयोग किया जाना चाहिये और **बहु-बिन्दु दाखिला** और **अनौपचारिक** तथा **सतत् शिक्षा की व्यवस्था** की जानी चाहिये।

२. सर्वसुलभ प्रारंभिक शिक्षा

२.१ जैसा कि संविधान के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में परिकल्पना की गई है, १४ वर्ष की आयु तक सर्वसुलभ शिक्षा को उच्चतम प्राथमिकता दी जानी चाहिये। इस स्तर पर शिक्षा बहुत ही निर्णायक होती है क्योंकि चरित्र और व्यक्तित्व के विकास की नींव इसी समय पड़ती है। इस स्तर पर आजकल जो शिक्षा दी जा रही है उसमें अनेक गंभीर दोष हैं। इसका हमारी परम्पराओं, मूल्यों तथा संस्कृति के आधार पर पुनर्गठन किया जाना चाहिये और इसे हमारी जरूरतों, आकांक्षाओं एवं जीवन स्थितियों के अनुसार बनाया जाना चाहिये।

२.२ प्रारंभिक शिक्षा को चरित्र-निर्माण के लिये एक मजबूत नींव रखनी चाहिये और नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को पाठ्यचर्या और शैक्षणिक विषयवस्तु का एक अनिवार्य भाग बनाया जाना चाहिये। इस स्तर की शिक्षा की विषयवस्तु में साक्षरता, गणित, इतिहास की समझ, वातावरण पर आधारित विज्ञान, सामान्य ज्ञान सांस्कृतिक मूल्यों और शारीरिक शिक्षा को शामिल किया जाना चाहिये। एक सुदृढ़ कृषि विषय-वस्तु के साथ सामाजिक दृष्टि से उपयोगी उत्पादक कार्य पाठ्यचर्या का एक अभिन्न अंग होना चाहिये। शिक्षा कार्यात्मक होनी चाहिये और **लोगों के जीवन और जिस वातावरण में यह दी जाती है, से सम्बद्ध होनी चाहिये।** इससे वैज्ञानिक प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलना चाहिये। इसमें लचक तथा नवीनता की व्यवस्था होनी चाहिये ताकि अध्यापक बच्चों की आवश्यकता को पूरा कर सके।

> आखिर कितनी बार बदलेगी ये शिक्षा नीति · · · · कितनी बार गरीब मां-बाप बच्चों को नई किताबें कापियां लाकर देंगे · · · कितनी बार शिक्षा के साथ यह खिलवाड़ चलेगा क्या यह नई शिक्षा नीति देश को नई दिशा देने में सक्षम है ?

२.३ औपचारिक शिक्षा की विद्यमान पद्धति के जरिए प्रारम्भिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने में समय लगेगा। जबकि ६-१४ वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए प्रारंभिक और माध्यमिक स्कूलों की व्यवस्था के जरिए औपचारिक प्रारंभिक शिक्षा की सुविधाएं बढ़ाना आवश्यक है तथापि, इसके साथ-साथ उन बच्चों के लिए जो शिक्षा के औपचारिक माध्यमों को छोड़ गए हैं और वे बड़े बच्चे, जिन्हें स्कूल जाने का अवसर ही नहीं मिला था अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम को

नई शिक्षा नीति का विस्तृत प्रारूप

विकसित करना भी महत्वपूर्ण है। इन कार्यक्रमों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाना चाहिए जिससे कि अगले १० वर्षों में ६-१४ वर्षों की आयु के सभी बच्चों को लाभ पहुंचाना संभव हो सके।

२.४ नामांकन मात्र ही पर्याप्त नहीं है। दाखिल किए गए प्रत्येक बच्चे को इस योग्य बनाया जाना चाहिए कि वह प्रभावी प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त कर सके सब बच्चों को स्कूल में बनाए रखने की समस्याओं का व्यौरेवार अध्ययन होना चाहिए। और बहुविंदु प्रवेश, अवरोधन को समाप्त करने, पाठ्यचर्या सुधार, उपयुक्त रूप से निर्मित अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम जैसे उपचारी कदम उठाने चाहिए। दोपहर के भोजन, उपस्थिति छात्रवृत्तियां, पाठ्यपुस्तकों, लेखन-सामग्री और वर्दियों की निःशुल्क सप्लाई जैसे प्रोत्साहन, विशेषकर लड़कियों और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन-जातियों के बच्चों की शिक्षा को बढ़ाने के उद्देश्य से प्रदान किए जाने चाहिए।

२.५ स्कूल के चारों ओर के समुदाय के विकास के लिए केन्द्र बिन्दु बन जाने चाहिए और इन शैक्षिक प्रयासों में समुदाय का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। समुदाय में सभी स्तरों पर उपलब्ध सुविज्ञता स्कूल के शैक्षिक कार्यक्रमों के समर्थन के लिए प्रयोग की जानी चाहिए।

२.६ देश को अगले ५ वर्षों में पहले शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर सामान्य स्कूल पद्धति की ओर बढ़ना चाहिए। इसका उद्देश्य होना चाहिए कोटि तथा दक्षता के स्तर पर ऐसी निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना जिससे यह सुनिश्चित हो जाए कि कोई भी मां-बाप सामान्य तौर पर अपने बच्चे को पद्धति से बाहर के किसी संस्थान में भेजने की आवश्यकता को महसूस नहीं करेगा।

२.७ पड़ोस स्कूल योजना सामान्य स्कूल पद्धति का मुख्य लक्षण होगा। स्कूलों को पड़ोस के सभी बच्चों को दाखिल करना पड़ेगा इससे राष्ट्रीय और सामाजिक एकता को बल मिलेगा।

३. प्रौढ़ शिक्षा :

३.१ प्रारंभिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने में हमारी असफलता के कारण हमारी जनसंख्या की बड़ी प्रतिशतता अनुमानतः २३०० लाख अनपढ़ है। इसमें अधिकतर हमारे समाज के गरीब और उपेक्षित व्यक्ति हैं जिनका देश की सुख-समृद्धि में बहुत महत्व पूर्ण योगदान है। अनपढ़ होने के अलावा, वे शोषण और सामाजिक असमर्थताओं से पीड़ित हैं और अपनी स्थिति सुधारने में असमर्थ हैं। योजनागत कार्यक्रमों से मिलने वाले लाभों का फायदा आबादी का यह काफी हिस्सा नहीं उठा पा रहा है। इसलिए राष्ट्र को चाहिए कि वह यह समझे कि उन्हें शिक्षित बनाना उसका परम-कर्तव्य है।

३.२ इन प्रौढ़ों के लिए शिक्षा का अर्थ केवल अक्षरज्ञान और अंकज्ञान के न्यूनतम स्तर की प्राप्ति ही नहीं बल्कि कार्यात्मक विकास और सामाजिक चेतना भी है। प्रौढ़ शिक्षा का एक राष्ट्रीय कार्यक्रम अवश्य आयोजित किया जाना चाहिए। इस कार्यक्रम के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी केवल सरकार की ही नहीं होगी बल्कि शिक्षकों, छात्रों, व्यापार, उद्योग, स्वैच्छिक तथा युवा संगठनों, समाज सेवकों जैसे समाज के सभी वर्गों की होगी और उसी प्रकार यह केवल एक सरकारी विभाग अर्थात् शिक्षा विभाग का ही दायित्व नहीं होगा बल्कि यह सरकार के सभी विभागों विशेष रूप से केन्द्र और राज्य के विकास विभागों, नगर पालिकाओं, पंचायतों और अन्य स्थानीय निकायों का संयुक्त दायित्व होगा।

३.३ निरक्षकों में अत्यधिक सशक्त आयु वर्ग हैं। १५-३५ का जिसमें १० करोड़ निरक्षक आते हैं। इसलिए, पांच वर्ष की अवधि में इस कार्यक्रम के अंतर्गत इस आयु वर्ग को साक्षर बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। **शिक्षा की विषय वस्तु इन लोगों की रुचियों तथा जरूरतों पर आधारित होनी चाहिए।** राष्ट्र को इस समस्या से अवगत कराने और प्रौढ़ों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रचार साधनों को पूरी तरह उपयोग में लाया जाना चाहिए ताकि वे इस कार्यक्रम के अंतर्गत दी जाने वाली शिक्षा का लाभ उठा पायें। विकास विभागों के विस्तार कर्मियों को चाहिए कि वे अपनी प्रचार सामग्री और विस्तार कार्यक्रमों को फिर से उपयुक्त रूप दें ताकि उन्हें साक्षर और प्रचार के लिए सरल बनाया जा सके। इस कार्यक्रम के सभी स्तरों के कर्मियों को पर्याप्त प्रशिक्षण भी देना होगा। इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने में राष्ट्र से गांव तक के सभी स्तरों पर सभी एजेंसियों और विभागों के बीच समन्वय करना आवश्यक होगा। इस कार्यक्रम का नेतृत्व करने तथा उसका मूल्यांकन करने की एक अन्तर्निर्मित पद्धति होनी चाहिए।

३.४ प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में उन प्रौढ़ों की रुचि को बनाए रखने के लिए सतत शिक्षा के उपाय शामिल किये जाने चाहिए जिन्होंने इसका लाभ उठाया है ताकि वे अपने ज्ञान तथा अपनी दक्षताओं को स्वयं विकसित कर सकें। इनमें सस्ती पुस्तकें तथा साहित्य, ग्रामीण पुस्तकालय और प्रचार-साधनों आदि के द्वारा तैयार की गई सामग्री हो सकती है। ग्रामीण पुस्तकालय पद्धति का विकास सतत शिक्षा कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है।

३.५ हमारे देश में अगले दशक में व्यापक साक्षरता को एक वास्तविकता बन जाना चाहिए।

४ माध्यमिक शिक्षा

४.१ जहां प्रारंभिक शिक्षा को सर्वव्यापक बनाने और प्रौढ़ शिक्षा की प्रोन्नति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाएगी वहां माध्यमिक शिक्षा में परिवर्तन और कोटि सुधार की ओर ध्यान देने की आवश्यकता होगी। **माध्यमिक स्तर का पहला चरण सामान्य शिक्षा हो सकता है जिसका उद्देश्य दक्षता प्राप्त करना और स्वयं सीखने की आदत डालना है।** इस स्तर को पूरा कर लेने पर छात्रों को जीवन की वास्तविकताओं को समझने और स्कूल के बाहर काम की दुनिया में विश्वास के साथ

प्रवेश करने के योग्य बन जाना चाहिए। केवल पुस्तकीय ज्ञान की प्राप्ति को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। इस स्तर पर शिक्षा की विषय वस्तु उपयुक्त रूप से विविधता पूर्ण बनाई जानी चाहिए और व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास की प्रोन्नति के लिए इसे और समृद्ध बनाया जाना चाहिए। पाठ्यचर्या और सह-पाठ्यचर्या कार्यक्रमों, शारीरिक शिक्षा, खेलों और समाज सेवा के माध्यम से छात्रों को प्रजातांत्रिक, धर्म-निरपेक्ष और समाजवादी समाज के लिए अनिवार्य दृष्टिकोणों और मूल्यों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और उसमें उन्हें दक्षता हासिल होनी चाहिए।

४·२ **ग्रामीण क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा की सुविधाएं बढ़ानी होंगी जिससे कि आबादी के कमजोर वर्ग इस तक पहुंच पाएं।** पत्राचार, अंशकालिक और स्वाध्याय पाठ्यक्रम शुरू करके तथा सार्वजनिक परीक्षाओं में प्राइवेट रूप से सम्मिलित होने की अनुमति द्वारा इस पहुंच को और भी बढ़ाया जा सकता है। **माध्यमिक शिक्षा का अगला चरण माध्यमिक स्तर तक शिक्षा के द्वारा हुए मस्तिष्क और व्यक्तित्व के सामान्य विकास और उच्च शिक्षा द्वारा उच्च शिक्षण और विशेषता के बीच सेतु का प्रतीक होगा।** यह स्कूली पद्धति के ही क्रम में होगा। इसमें सामान्य शिक्षा पाठ्यक्रम और व्यावसायिक शिक्षा पाठ्यक्रम पढ़े जाने वाले शिक्षण के दोनों प्रमुख अवयव होने चाहिए और एक पाठ्यक्रम से दूसरे पाठ्यक्रम में बे रोक-टोक जाने की सुविधा होनी चाहिए। सामान्य शिक्षा पाठ्यक्रम छात्र को उच्च शिक्षा अथवा व्यावसायिक अध्ययन के लिए तैयार कर सकता है। इसमें समाज के लिए उपयोगी उत्पादन कार्य को पर्याप्त स्थान प्राप्त होगा। व्यवसायिक पाठ्यक्रम में प्रौद्योगिकियों, संबंधित विज्ञानों, कृषि और अन्य व्यावहारिक कार्य के अध्ययन के माध्यम से दस्तकारी अथवा अनेक दस्तकारियों के अध्ययन की व्यवस्था होगी। इसका उद्देश्य होगा विकासशील अर्थ-व्यवस्था के के कारण रोजगार के क्षेत्र में दस्तकारियों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए छात्रों की रोजगार क्षमता को बढ़ाना। **उच्चतर माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रमों की पद्धति में समयावधि तथा विषय वस्तु दोनों के संबंध में लचीलापन हो सकता है।** जो छात्र शिक्षा के उच्च स्तरों तक जाना चाहते हैं उनके लिए सेतु पाठ्यक्रम उपलब्ध कराये जाएंगे। उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण के संदर्भ में स्कूलों को समाज के निकट लाना आवश्यक होगा ताकि समाज के जो लोग अपेक्षित ज्ञान तथा दक्षताएं रखते हैं, उनकी सेवाओं का उपयोग किया जा सके।

५. उच्च शिक्षा :

१. समय आ गया है जब कि उच्च शिक्षा के दृष्टि कोण में आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। जो पद्धति इस समय प्रचलित है उसमें असंख्य छात्र बिना किसी उद्देश्य के और इस उम्मीद से उच्चतर शिक्षा ग्रहण करते हैं कि वो डिग्री रोजगार के लिए शर्त के रूप में निर्धारित की गई है, उसे ग्रहण करके वे आसानी से नौकरी प्राप्त कर लेंगे। इसी कारण कालेजों तथा विश्वविद्यालयों की की संख्या में वृद्धि हुई है। उच्च शिक्षा कोटि सामान्यतः गिरी है। छात्र नाखुश है और अभिभावक परेशान है। उच्चतर शिक्षा का व्यय बहुत ज्यादा है और स्कूल शिक्षा की मूल आवश्यकताओं से निवेश को हटाकर इस ओर लगाया जाता है। नौकरियां प्राप्त करने के आशय से उपाधियों के लिए दौड़-धूप इतने बड़े निवेश को सिद्ध नहीं कर सकती है। ज्ञानार्जन ही उच्च शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। उपाधियों को नौकरियों के सामान्य ढाँचे से अलग कर दिया जाना चाहिए। नई भर्ती नीतियां और पद्धतियाँ तैयार किये जाने की जरूरत है और इनमें विशिष्ट रोजगारों के लिए उपयुक्त सेवापूर्व प्रशिक्षण भी अंतर्निहित होना चाहिए। **संगठित क्षेत्र में वेतनों की विषमताओं को कम करने से तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण से परिवर्तन की प्रक्रिया में सहायता मिलेगी।**

राष्ट्रीय शिक्षा नीति

विचार आमन्त्रित हैं

लम्बे समय से एक बहस देश में चल रही है कि चालू शिक्षा नीति राष्ट्रीय आकांक्षाओं और आवश्यकताओं के साथ मेल नहीं खाती। जनता सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की दिशा और प्राथमिकताओं पर एक नया प्रारूप तैयार किया है। इस प्रारूप के द्वारा प्रधानमंत्री और शिक्षामंत्री ने देश के जनमानस को बहुत आशा और विश्वास देने की कोशिश की है।

क्या आप समझते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति का नया प्रारूप देश को इस संकट से उभार सकेगा? नये प्रारूप को आप किस दृष्टि से आशाजनक और किस दृष्टि से निराशाजनक या अधूरा मानते हैं? आपकी दृष्टि से इसमें कौन सी कमी है जो शिक्षा नीति के दस्तावेज में लाना आवश्यक है?

इस विषय पर छात्र-छात्राओं, शिक्षकों एवं जागरूक नागरिकों के विचार आमंत्रित हैं।

कृपया अपने विचार ५०० शब्दों की सीमा के भीतर हमें १५ जून से पूर्व भेज दें। जुलाई अंक में ये विचार प्रकाशित होंगे। पत्र के ऊपर "राष्ट्रीय शिक्षा नीति बहस" अवश्य लिख दें।

सर्वश्रेष्ठ ३ प्रविष्टियों को पुरस्कृत किया जायेगा।

—सम्पादक

२. **उच्च शिक्षा की सुविधाओं के प्रसार तथा प्रवेश की नीतियों को प्रतिबंधक तथा चयनात्मक बनाना होगा। और इसके साथ-साथ पढ़ने वालों की प्रथम पीढ़ी जन-जातियों और अन्य वंचित वर्गों की विशेष आवश्यकताओं को सुरक्षित रखने के लिए समुचित पूर्वोपाय करने होंगे।**

३. पत्राचार पाठ्यक्रमों अंशकालिक तथा स्व-अध्ययनों के माध्यम से और सार्वजनिक परीक्षाओं में प्राइवेट उम्मीदवारों को बैठने की अनुमति देकर भी पढ़ने वालों को सुविधाएं प्रदान की जाएंगी।

४. उच्च शिक्षा की स्टेज में एक अवर स्नातक स्तर होगा जिसकी अवधि अधिमानतः ३ वर्ष की होगी। इसके बाद उत्तर-स्नातक पाठ्क्रम और अनुसंधान होगा। अध्ययन के पाठ्क्रमों का ढांचा पुनः तैयार किया जायेगा जिससे कि उन्हें छात्रों तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं के और सामाजिक परिवर्तन तथा राष्ट्रीय विकास में सहायता करने के उद्देश्य से अनुकूल बनाया जा सके। राष्ट्रीय तथा समाज सेवाओं के कार्यक्रमों में सहयोग देना इस स्टेज की एक अनिवार्य विशेषता होगी। अनुसंधान की कोटि को सुधारा जाएगा और अनुसंधान के प्रयासों में सहकारी सहयोग को प्रोत्साहित किया जाएगा। जबकि मौलिक अनुसंधान विश्वविद्यालयों में ही चलेगा तो भी जो प्रयोग उन्मुख अनुसंधान विशेष रूप से राष्ट्रीय अनुसंधान प्रयोगशालाओं तथा उद्योग के सहयोग से होगा, को प्रोत्साहित किया जाएगा। विश्वविद्यालय पद्धति समाज के विकास तथा स्वयं-शिक्षा-पद्धति के विकास का दायित्व संभालेगी। विश्वविद्यालय कालेजों के साथ सहयोग करेंगे जो आगे पड़ोस के माध्यमिक एवं प्रारम्भिक स्कूलों के साथ मिलकर कार्य करेंगे तथा संपूर्ण परिसर सभी स्तरों पर शिक्षा के स्तर में सुधार करने में सहायक होगा। विश्वविद्यालय तथा कालेज पारस्परिक सेवाओं से घनिष्ठ संबंध विकसित करेंगे एवं स्थानीय समाज के साथ मिलकर चलेंगे।

५. अंतर्राष्ट्रीय स्तरों को बनाये रखने के लिए, और ऐसी कार्यकुशलता के विकास के लिए जो दुनियां की सबसे अच्छी कार्यकुशलता का मुकाबला कर सके, श्रेष्ठ अध्ययन केन्द्रों के विकास हेतु कार्यवाही की जाएगी।

६. शिक्षा का ढांचा

६.१ स्कूल शिक्षा १२ वर्षों की अवधि की हो सकती है। इसमें प्रारम्भिक माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तरों की शिक्षा होगी।

६.२ उच्च शिक्षा का अवसर स्नातक स्तर ४ वर्षों की अवधि का हो सकता है। तथापि, **जहां कोई राज्य चाहे वह २ वर्षीय पास तथा 3 वर्षीय आनर्स पाठ-क्रम रख सकती है।**

7. तकनीकी शिक्षा

७.१ तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में एक कुशल राष्ट्रीय जनशक्ति सूचना पद्धति अगले पांच वर्षों के अन्दर-अन्दर विकसित करनी होगी ताकि एक अधिक कुशल तथा सार्थक आधार पर तकनीकी शिक्षा के कार्यक्रम को संचालित किया जा सके और विकासशील क्षेत्रों के लिए व्यवस्था की जा सके। साहसिक दक्षता प्रदान करने के उद्देश्य से तकनीकी शिक्षा पाठ्क्रमों को उपयुक्त रूप से तैयार करना होगा शिक्षा के आगे जारी रखने के लिए ग्रेडिंग प्रणाली को विकसित किया जाना चाहिए। अनुसंधान के लिए औद्योगिक और ग्रामीण विकास पर जोर दिया जाएगा। प्रबंध शिक्षा पाठ्यक्रमों को इस प्रकार पुनर्गठित किया जाना चाहिए ताकि लघु तथा मध्यम स्तर के उद्योगों और क्षेत्रीय आवश्यकताओं जैसे कि यातायात, उर्जा, स्वास्थ्य, कृषि सहयोग ग्रामीण विकास के लिए प्रबंधकीय जनशक्ति उपलब्ध की जा सके। तकनीकी संस्थानों, विशेषकर पालिटेक्निकों को केन्द्र-बिन्दु की तरह कार्य करने के लिए चुना जाएगा, जहां निदान हेतु ग्रामीण क्षेत्रों की समस्या का अध्ययन किया जाएग। उद्योगों के साथ सार्थक अंतरक्रिया तथा सहयोग को सुनिश्चित करने के लिए कार्यक्रम तैयार किए जाएंगे। प्रयोगशालाओं और कार्यशालाओं को सुदृढ़ बनाकर प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा संस्थाओं की गुणवत्ता के सुधार के लिए प्रयास किए जाएंगे.

७.२ राष्ट्र के लिए सामरिक महत्व के क्षेत्रों जैसे उर्जा संस्थान, ग्रामीण विकास तथा प्रौद्योगिकी आदि में संस्थाओं को उच्च अनुसंधान करने के लिए कहा जाएगा।

८ कृषि शिक्षा

८.१ प्रत्येक राज्य में कम से कम एक कृषि विश्वविद्यालय होना चाहिए ; अधिमानतः संघटक कालेजों सहित एक ही परिसर वाला विश्वविद्यालय। ये विश्वविद्यालय समस्त राज्य के कृषि और संबध क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए जिम्मेदार होना चाहिए। प्रत्येक विश्वविद्यालय का प्रत्येक कृषि जलवायु क्षेत्र में स्थान विशेष पर अनुसंधान के लिए कम से कम एक सघन केन्द्र होना चाहिए। बुनियादी अनुसंधान में उच्च अध्ययन के विशिष्टता केन्द्रों के विकास हेतु कृषि विश्वविद्यालयों की सहायता की जानी चाहिए। अन्य विश्वविद्यालयों के आवश्यक क्षमता रखने वाले कृषि विभागों और संकायों की भी कृषि शिक्षा संबंधी पूरक कार्यक्रम विकसित करने के लिए सहायता की जानी चाहिए।

८-२ नई औद्योगिक की स्थापना की स्थानान्तरण प्रतिक्रिया में गति लाने के लिए कृषि विश्वविद्यालयों और विस्तार विभागों के बीच उपयुक्त संपर्क विकसित किया जाना चाहिए। कृषि विश्वविद्यालयों को चाहिए कि ग्रामीण समुदायों की कार्यत्मक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सतत शिक्षा के पत्राचार पाठ्क्रमों सहित अनौपचारिकशिक्षा के जोरदार कार्यक्रमों को भी विकसित करें।

८.३ प्रत्येक कृषि विश्वविद्यालय को कृषि विज्ञान केन्द्र विकसित करने चाहिएं जो ग्रामीण युवकों को संबद्ध दक्षताओं में प्रशिक्षण दे सकें और प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में भाग ले सकें।

९. संस्कृति

९.१ यह सुनिश्चित करने के लिए कि सांस्कृतिक विकास शिक्षा की औपचारिक तथा अनौपचारिक पद्धतियों का एक अभिन्न अंग बन सके, शिक्षा में एक रचनात्मक प्रयास करने की आवश्यकता है। अब तक शैक्षिक पद्धति को देश की समृद्ध सांस्कृतिक दाय एवं उपलब्ध व्यापक मानव संसाधनों के.

[शेष पृष्ठ 29 पर

भारत में क्रांति की दिशा

□ प्रो० राजेन्द्र सिंह
सर कार्यवाह,
राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ

अभी कुछ समय पूर्व देश में एक बड़ा भारी परिवर्तन आया। इस परिवर्तन के लाने में युवकों का बहुत बड़ा कार्यभाग रहा है। श्री जयप्रकाश बाबू के आह्वान पर उनके नेतृत्व में भारत के युवकों ने बड़े भारी संघर्ष की भूमिका निभाई। देश को तानाशाही के चपेट से मुक्त कर व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जनतंत्र की पुनर्स्थापना की गयी। इस संघर्ष में हमारी सफलता पर विश्व के अनेक राजनीतिज्ञों ने भारत के प्रति आदर से सर नमाया। विकासशील देश से एक बार तानाशाही की पटरी पर गाड़ी छूट गयी तो पुनरपि जनतंत्र की स्थापना हो सकती है, इसकी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। भारत की साधारण जनता इस प्रकार कुछ कर सकेगी, इतने विवेक साहस और सूझबूझ का परिचय दे सकेगी, इसकी किसी को अपेक्षा नहीं थी, परन्तु यह परिवर्तन आया। इसीलिये विश्व के सारे-देश आश्चर्यचकित रह गये।

परिवर्तन तो आया किन्तु···

किन्तु इस परिवर्तन के आने के बाद, पिछले ३,४ वर्षों में जिन समस्याओं की ओर सबका ध्यान गया था, वे बहुत कम मात्रा में सुलझी है और आज भी उसी प्रकार से विद्यमान है। हम तो जानते हैं कि देश में भयानक गरीबी है। पचास प्रतिशत से अधिक जनता गरीबी की रेखा के नीचे जीवन बिता रही है, उसे दो जून का भोजन भी उपलब्ध नहीं होता पढ़े-लिखे लोगों के सामने रोजगार-व्यवसाय की समस्याएं है। पढ़ा-लिखा वर्ग बहुत बड़ी संख्या में केवल रोजगार कार्यालयों में अपना नाम भरवाता है। लगता है कि काम करने के लिये हाथ है, मगर काम नहीं। सारे देश के अन्दर एक रोग की तरह भ्रष्टाचार, चरित्र का अभाव दिखाई देता है। आज का युवक भी जब किसी नौकरी की तलाश करता है तो वह यह जानना चाहता है कि इसमें तनख्वाह कितनी मिलेगी और ऊपर की आमदनी कितनी होगी। ऐसा सोचने वाला युवक जो इस देश से भ्रष्टाचार मिटाने की कल्पना करता है, उसके भी मस्तिष्क में ऐसे विचार आते हैं। इतना फैला हुआ यह रोग है।

युवकों की मनःस्थिति

ऐसे सारे संकटों को देखकर मन में विचार आता है, इस स्थिति को बदलना है। इस परिवर्तन के लिये ही तो हम काम में लगे थे। और इस परिवर्तन की आकांक्षा स्वाभाविक ही विद्यार्थी वर्ग में हो, क्योंकि जो बूढ़े है, जिनकी आयु ६०-७० वर्ष की हो चुकी है, वे सोचते हैं-अब कितने वर्ष रहना है इस देश में, और इसीलिये उनमें स्थिति बदलने अथवा परिवर्तन के प्रति उतनी उमंग-उत्कंठा नहीं होती। परन्तु जो युवक है, वह जानता है कि उसे अभी ४०-६० वर्ष रहना है, यह दुर्दशा उसे सहन नहीं होती। उसके मन के अन्दर इस देश से भ्रष्टाचार, गरीबी और बेरोजगारी मिटाकर देश के युवकों को काम में लगाकर इस देश का नाम संसार में ऊँचा उठे, श्रेष्ठ बने, ऐसी आकांक्षा होना स्वाभाविक है।

क्रांति के नारे

इसलिये देश में एक नारा भी चलता है। बाबू जयप्रकाश जी ने उस नारे को बुलन्द किया। स्वाधीनता के पूर्व 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा लगाया जाता था। अब समय क्रांति का नारा चला है। प्रत्येक क्षेत्र के अन्दर परिवर्तन की आवश्यकता है। यह परिवर्तन तीव्र गति से होना चाहिये। यही तो क्रांति का अर्थ है। इस परिवर्तन की चाह में किन-किन बातों की आवश्यकता होगी, क्रांति के लिये कौन कौन सी समिधा है जिसके बिना परिवर्तन नहीं हो सकता, इसका हमें अध्ययन करने की आवश्यकता है।

संघ भी परिवर्तन का हामी

कई बार लोग समझते है, कह भी देते हैं और नारा भी लगाते हैं कि संघ के लोग तो यथास्थितिवादी हैं, परिवर्तनवादी नहीं है। यदि हम यथास्थिति होते तो इतनी परिश्रम, इतनी दौड़-धूप, सैकड़ों-हजारों युवकों को जो इंजीनियर-डाक्टर हैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुये हैं, कहीं आराम, तो कहीं तमिलनाडु भेजने का काम, दिन-रात की दौड़ धूप और इतना सारा परिश्रम आखिर क्यों करते? हम यथास्थितिवादी नहीं हैं। हम भी परिवर्तन चाहते हैं। परन्तु हम सारी बातों को गहराई से सोचते है। यही हमारी विशेषता है। परिवर्तन तो चाहिये किन्तु उसकी दिशा क्या होनी चाहिये—क्या यह महत्व की बात नहीं है? अगर परिवर्तन हुआ और उससे हम आज की स्थिति से भी नीचे की स्थिति में आ गये तो क्या वह परिवर्तन हमें प्रिय होगा? जैसा अंग्रेजी में कहा जाता है (From fry pan to fire) या गरम तवे पर सिक रही रोटी चूल्हे के अन्दर चली गयी तो ऐसे परिवर्तन का लाभ नहीं होगा। कभी-कभी उत्साह में आकर परिवर्तन की बात तो हम कहते हैं किन्तु उसके परिणामों की चिन्ता नहीं करते

कोई भी विचारशील व्यक्ति यह नहीं चाहता। परिवर्तन की एक सुस्पष्ट दिशा होनी चाहिये और वह उन्नति की, प्रगति की, होनी चाहिये।

परिवर्तन की दिशा क्या हो ?

संघ में हमारा यही आग्रह होता है। आप में से अनेक लोगों ने संघ की प्रतिज्ञा तो सुनी होगी। उस प्रतिज्ञा में हम कहते हैं कि राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति के लिये हम संघ में उन्नति चाहते हैं। किसी एक क्षेत्र की उन्नति राष्ट्र के लिये उचित नहीं। उत्तर भारत में फालेरिया नामक एक बीमारी होती है जिसमें शरीर का कोई एक अंग जैसे हाथ, पैर या गर्दन मोटी होने लगती है। ऐसे व्यक्ति को कोई स्वस्थ नहीं कहेगा। विकास तो सर्वांगीण — सभी अंगों का होना चाहिये। इसी प्रकार कोई केवल श्रमिकों का, कोई केवल विद्यार्थियों का विकास चाहता है। यह भी उचित नहीं। समाज के सभी घटकों का समन्वित विकास-प्रगति की हम कामना करते हैं।

फ्रांस की क्रांति

दूसरा भ्रम यह है कि क्रांति या परिवर्तन आगजनी, रक्तपात, तोड़फोड़ से ही संभव है किन्तु कई बार रक्तपात होता है पर परिवर्तन नहीं आता। जिसमें परिवर्तन नहीं वह क्रांति कैसी ? क्रांति के पीछे परिवर्तन यह मुख्य वस्तु है। फ्रांस की क्रांति का स्मरण करें— बड़ी श्रद्धा से नाम लिया जाता है। उस 'फ्रेन्च रिवोल्यूशन में इक्वालिटी, फ्रेटरनिटी जैसे बड़े-बड़े शब्द कहे गये। 'समता' 'बन्धुता' का नारा दिया गया। उस क्रांति में सैकड़ों का बलिदान हुआ। वहां के राजा-रानी जनता से बिलकुल कटे, अलग थे, उन्हें इस बात का भी पता नहीं था कि जनता को खाना मिल रहा है या नहीं। जब भीड़ यह नारे लगाते जा रही थी—"वी वान्ट ब्रेड"—हमें रोटी चाहिये—तो रानी ने कहा, रोटी नहीं मिलती तो मिठाई क्यों नहीं खाते ? उसे तो यह कल्पना भी नहीं थी कि जिसे रोटी या ब्रेड नहीं मिलती उसे केक या मिठाई कैसे मिलेगी? वहां क्रांति के दौरान राजा-रानी को फांसी पर चढ़ा दिया गया। पर उसके बाद कौन राजा बना ? तो, नेपोलियन समाज का व्यक्ति था, सादगी का उसका जीवन था। किन्तु जब वह बादशाह बन गया तो उसकी शान शक्ति लोगों से दूगोड़ी रहने लगी। उसकी रानी तो कपड़ा दुबारा नहीं पहनती थीं। इस प्रकार का जीवन आया तो क्या वहां बड़ा रिवोल्यूशन हुआ कहेंगे ?

रूसी क्रांति का क्या हुआ

अब रूस की बात देखें। रूसी क्रांति की भी बड़ी चर्चा की जाती है। वहां का शासक बड़ा जालिम व्यक्ति था—जिसे चाहा उसे फांसी दे दी—साइबेरिया भेज दिया। उस शासन को बदलने वहां 'रिवोल्यूशन' हुआ जिसे १९१७ की क्रांति कहा जाता है। मैं कभी सोचता हूं कि क्या वास्तव में वहां क्रांति हुई थी ? परिवर्तन हुआ था ? जिस परिवर्तन या रिवोल्यूशन के नाम पर वहां रक्तपात हुआ, लाखों लोग मौत के घाट उतारे गये— आज वहां पर क्या स्थिति है ? क्या अत्याचार कम हो गये ? क्या आज भी वहां बिना किसी अपराध के लोगों को साइबेरिया नहीं भेजा जाता ? मृत्यु के घाट नहीं उतार जाता? क्या नोबल-प्राइज के विजेता सखारोव और उसके जैसे अन्य कोई वैज्ञानिक एवं श्रेष्ठ व्यक्ति के मुंह बन्द नहीं किये जाते ? उन्हें देश से बाहर क्यों निकाल दिया जाता है ? व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की लड़ाई आज भी वहां लड़ी जा रही है, वहां आज जार—निकोलस भले ही न हों उनके स्थान पर ब्रेजनेव या कोसिजिन के एक इशारे, एक हुकुम से कितने लोग उजड़े जाते हैं। जहां मानव का मूल्य नहीं उसे क्या बड़ी क्रांति समझा जाये ?

क्रांति का रक्तपात से कोई नाता नहीं

वास्तव में रक्तपात से क्रांति का या परिवर्तन का नाता नहीं जोड़ा जाना चाहिये। हमने विगत वर्षों में भी एक क्रांति कर के दिखाई। इस देश की तानाशाही को पुनः प्रजातंत्र की दिशा में बदल दिया—और कितनी रक्त की नदियां बहाई ? कितने लोगों को गोली से उड़ा दिया ? हम सब जानते हैं कि वह सब अत्याचार करने वाले लोग फिर से सामने आये होंगे किन्तु किसी को गोली से उड़ाने या किसी की गर्दन काटने की आवश्यकता नहीं पड़ी। यह भारत वर्ष की विशेषता है। पुरातन काल से भी हमने इस प्रकार के परिवर्तन कर दिखाये हैं। आज हमारे यहां शक-हूण दिखाई नहीं देते। यूनान के उस समय के यवन दिखाई नहीं देते। कहां गये सब ? क्या कोई यह कहता है कि मैं शकों—हूणों या यवनों का वंशज हूं ? इतने परिवर्तन हुये किन्तु कहीं यह लिखा है क्या कि इतने लोगों का हमने कत्लेआम किया ? तो, हम ऐसे परिवर्तन के हामी हैं, जो शांति से होता है, समझा-बुझा कर होता है, अन्तःकरण में परिवर्तन लाकर होता है। हमने आज परिवर्तन करके दिखाया है। हम ऐसा ही परिवर्तन इस देश में चाहेंगे। "सही दिशा में परिवर्तन"— रक्तपात या आगजनी की कोई आवश्यकता नहीं—ऐसी क्रांति के हम हामी हैं। इसलिये जब मजाक में कभी कोई पूछता है तो हम कहते कि हम लोग मकर संक्रांति मनाते हैं। संक्रांति का अर्थ है —सम्यक क्रांति—सही दिशा में क्रांति और मकर संक्रांति के साथ एक सही दिशा में परिवर्तन आता है। क्योंकि सर्दी घटती है, अंधेरी रात घटती है, प्रकाश और दिन बड़ा होता है। ऊर्जा बढ़ती है कार्य शीलता बढ़ती है—उस संक्रांति को हम मानते हैं—संघ मानता है—देश मानता है अर्थात् हम सही दिशा में परिवर्तन के पक्षपाती हैं।

परिवर्तन कब सम्भव है ?

यह परिवर्तन कैसे आया ? अगर हम इस परिवर्तन का विश्लेषण करें तो ध्यान में आयेगा कि एक बात तो बड़ी स्पष्ट है। समाज जब त्रस्त रहता है, दुःखी रहता है चारों ओर की परिस्थिति बड़ी भयावह, संत्रस्त और कष्टप्रद रहती है तब परिवर्तन के लिये उसके मन में चाह उत्पन्न होती है और ऐसा समाज किसी भी परिवर्तन के प्रयत्न में साथ में साथ देता है, कार्य करता है। इसलिये समाज में असन्तोष होना आवश्यक है— उस प्रकार का घोर असंतोष तो वर्षों से है। इस असंतोष को प्रकट करने की आवश्यकता पड़ती है। हमने देखा कि पिछले वर्षों में जो कुछ भी परिवर्तन आया वह समाज के सहयोग से आया। यदि समाज का सहयोग, उस समय भी परिस्थिति में घोर असंतोष नहीं होता तो न समाज बदलता न शासन। अतः परिवर्तन के लिये समाज

में घोर असंतोष होना आवश्यक है। आज भी आप किसी से पूछिये तो वह यही कहेगा कि आज की स्थिति अच्छी नहीं है। वह भ्रष्टाचार की शिकायत करेगा, गरीबी से परेशानी व्यक्त करेगा, बेरोजगारी की बात करेगा। केवल १०-१५ मुट्ठी भर लोगों को छोड़कर समाज का साधारण व्यक्ति दुःखी और त्रस्त है—वह परिवर्तन चाहता है। परिवर्तन के लिए नितान्त आवश्यक वस्तु असंतोष मौजूद है, उपलब्ध है। किन्तु समाज के केवल चाहने मात्र से परिवर्तन नहीं होता। अगर ऐसा होता तो रावण के राज्य में कितने लोग त्रस्त और दुःखी थे, परन्तु अपने आप तो परिवर्तन नहीं आया। जब श्रेष्ठ पुरुष, महान पुरुष, नेता के रूप में प्राप्त हुआ, जो इस परिवर्तन की दिशा में समाज को ले जा सके, समाज का जिन्हें विश्वास प्राप्त था जिनके इशारे पर समाज चलने के लिए तैयार था तब परिवर्तन आया। इस प्रकार के नेता की आवश्यकता पड़ती है। राम आये तब रावण राज्य का अन्त हुआ। शिवाजी महाराज उत्पन्न हुये तब कहीं लोगों में विजय की कल्पना जागी और स्वधर्म और स्वराष्ट्र की पुनर्स्थापना हो सकी।

त्रिवेणी-संगम

यहां दो बातें समझना सरल है—एक श्रेष्ठ महान नेता की आवश्यकता और साथ-साथ समाज का दुःखी और त्रस्त होना। परंतु एक तीसरी वस्तु बड़ी महत्व की होती है, किन्तु दिखाई नहीं देती है, गहराई के अध्ययन के बाद दिखलाई पड़ती है, जैसे कि प्रयाग में गंगा-यमुना तो दिखाई देती है परन्तु सरस्वती लुप्त है, इसलिये जिनके संगम को त्रिवेणी कहा गया। समाज की प्रक्रिया में भी त्रिवेणी की आवश्यकता है। यह तीसरी वस्तु है—"श्रेष्ठ कार्यकर्ताओं का बहुत बड़ा समुदाय"। यह समुदाय नेताओं के साथ आत्मीयता से जुड़ा है। और दूसरी ओर समाज के साथ भी आत्मीयता से जुड़ा है। समाज के साथ इसके अपनत्व के सम्बन्ध है। यह जो कहता है वह समाज मानता है और करता है। समाज तो नेता को देख नहीं पाता और न उसके पास पहुंच पाता है। उस नेता को वह अपने छोटे छोटे कार्यकर्ताओं के माध्यम से जानता है। इस प्रकार समाज और नेता को जोड़ने वाली कड़ी अथवा पुल के रूप में कार्यकर्ता काम करता है, अन्यथा नेता और समाज नदी के किनारे पर ही पड़े रहेंगे। नेता जो आज्ञा देगा जो विचार व्यक्त करेगा वह समाज तक नहीं पहुंच पायेगा और समाज के दुःखदर्द को नेता तक पहुंचाने की प्रक्रिया अधूरी पड़ जायेगी।

रामराज्य कैसे आया ?

कार्यकर्ताओं के अभाव में परिवर्तन नहीं आता। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। रावण राज्य में राक्षसों के बढ़ते अत्याचार से ऋषि-मुनियों की हड्डियों के ढेर दिखाई दिये तब उन्होंने महसूस किया कि रावण राज्य का कितना आतंक है जो देश के लिये, समाज के लिये तप करते हैं—ये राक्षस उन्हीं का सिर काटकर खा जाते हैं। यह देखकर राम को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने प्रण किया कि "सारी दुनिया से मैं निशाचरों को मिटाकर रख दूंगा"—"निसिचर हीन करऊं महि, भुज उठाई पन कीन्हा।" उस समय राम की आयु कोई १५-१६ वर्ष की रही होगी। किन्तु प्रतिज्ञा करते ही दूसरे या तीसरे दिन उन्होंने रावण पर आक्रमण किया हो, ऐसी बात रामायण में नहीं लिखी गयी है—तो राम ने अपने १४ वर्ष के वनवास काल में, पूरे देश में घूम-घूम कर देखा कि शहर और ग्राम वासी किस प्रकार रावण के अत्याचारों से पीड़ित, भयभीत हैं। ऐसे समय उन्होंने वनों में रहने वाले जो नर हैं—वन नर याने वानरों को संगठित किया, जिनका सत्ता से कुछ लेना-देना नहीं था। ऐसे वानरों के संगठन के सहारे उन्होंने राष्ट्र के परिवर्तन की योजना बनाई। हम तो गाली देते हैं कैकयी या मंथरा को, पर वे इस योजना के पात्र थे। यह भी सही है कि यदि राम उसी समय राजा बन जाते तो शायद रामराज्य नहीं आता। रामराज्य के लिये पहले रावण राज्य को मिटाने की आवश्यकता थी। समाज में उस वक्त जो परिस्थिति थी उसे देखने और समझने की आवश्यकता थी। राम को वनवास मिला। राम ने सारे प्रदेशों का भ्रमण किया। १४ वर्षों तक जनता के साथ समरस होकर उनके दुःख-दर्दों को समझा। जनता ने देखा कि राम कितने श्रेष्ठ हैं कितने तेजस्वी, कितने गुणी हैं। उनके मन में दरिद्रनारायण के प्रति, सबरी और विषादराज के प्रति कितना प्रेम है, वानरों से कितना अपनत्व का सम्बन्ध है। कितने शूर और साहसी हैं वे जो एक तीर के अन्दर खर दूषण और बाली की समाप्ति कर सकते हैं। इस प्रकार नेता की शूरता, श्रेष्ठता, योग्यता और हृदय का प्रेम दोनों का लोगों ने अनुभव किया और हजारों लाखों अनुयायी खड़े किये। इनमें से कुछ का नाम तो हम जानते हैं। हनुमान, जाम्बुवन्त, सुग्रीव, अंगद जैसे तरह-तरह की योग्यता वाले ये छोटे छोटे कार्यकर्ता खड़े हुए। तब जाकर सीताहरण का क्षोभजनक प्रसंग आता है जिसके विरुद्ध सारे समाज में वातावरण बना और तब कहीं राम ने रावण पर आक्रमण कर रावण राज्य की समाप्ति और रामराज्य की स्थापना की।

डा० हेडगेवार ने यह जाना कि देश की जनता परिस्थिति से त्रस्त है, वह परिवर्तन चाहती है। इसलिए उन्होंने इस संगठन का बीजारोपण किया जहां देशभक्त चरित्रवान कार्यकर्ताओं का निर्माण किया जा सके। आपने संघ की प्रार्थना सुनी होगी—उसमें हमने अपने कार्यकर्ताओं के सारे गुणों का वर्णन किया है—कार्यकर्ता योग्यता सम्पन्न, शरीर से बलिष्ठ होना चाहिए—उच्च श्रेणी का, बुद्धिमान और सारी कठिनाइयों से, समस्याओं से रास्ता निकालने वाला, चारित्र्यवान कार्यकर्ता चाहिये।

कार्यकर्ता चाहिये

छत्रपति शिवाजी महाराज ने भी केवल १४ वर्ष की आयु में स्वधर्म और स्वराज्य की स्थापना का व्रत लिया था और ४-६-१० लोगों से मिलकर एक-एक कार्यकर्ता की लम्बी मालिका निर्माण की—उनमें कोई तानाजी मालुसरे होंगे, कोई नेताजी पालकर-मुरारबाजी

होंगे तो कोई बाजी प्रभु देशपांडे होंगे—ऐसे सैकड़ों कर्त्तव्यवान, निष्ठावान योग्य साहसी कार्यकर्ता उन्होंने खड़े किये। इन कार्यकर्ताओं के बल पर ही उन्होंने समाज जागृति की ओर परिवर्तन का महान कार्य खड़ा कर दिखाया। साधारण समाज तो नेता का नाम ही जानता है और कार्यकर्ताओं के माध्यम से काम करता है। आपने सुना होगा कि स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो सर्वधर्म सम्मेलन में हिंदूधर्म ध्वजा फहराकर, दुनिया में भारत का नाम ऊंचा किया और दिग्विजय प्राप्त कर जब स्वदेश लौटे तो भारत की दुर्दशा देखकर उन्होंने कहा कि—"मुझे अपने सरीखे १०० कार्यकर्ता मिलने चाहियें। मुझे ऐसे कार्यकर्ता चाहिये जिनके हृदय में देश के प्रति ममता है—only Bharat Mata is our Devata—ऐसी उनकी निष्ठा हो-भारत माता को पूजा करने करने वाले कार्यकर्ता चाहियें।"

नेताओं की कमी नहीं

यह भारत का सौभाग्य रहा कि देश में ऐसे महान पुरुष उत्पन्न होते रहे। दासता के काल में भी ऐसे पुरुष उत्पन्न हुए—महान पुरुषों के बारे में भारत मां की कोख खाली नहीं हुई। स्वामी दयानन्द, महर्षि अरविन्द, रमण जैसे विश्व स्तर के लोग भारत में हुये हैं। तिलक महात्मा गांधी, जयप्रकाश कोई मामूली हस्तियां नहीं-विश्व का नेतृत्व करने की क्षमता उनमें रही है। किन्तु यदि अभाव रहे है तो कार्यकर्ताओं का। जैसे स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि मुझे मेरे जैसे १०० कार्यकर्ता मिलने चाहियें। कहां से मिलेंगे यह कार्यकर्ता-ये किसी फैक्टरी या बाजार में तो नहीं मिलते कि आर्डर देकर खरीद लिये। ये तो निर्माण करने पड़ते हैं और इनके निर्माण में वर्षानुवर्ष लगते हैं। महान पुरुष अकेला कुछ नहीं कर सकेगा। कार्यकर्ताओं के अभाव में वह हाथ मलता रहेगा

कार्यकर्ता कैसे हों

डा० हेडगेवार ने यह जाना कि देश की जनता परिस्थित से त्रस्त है, वह परिवर्तन चाहती है। इसलिए उन्होंने इस संगठन का बीजारोपण किया, जहां देशभक्त चरित्रवान कार्यकर्ताओं का निर्माण किया जा सके। आपने संघ की प्रार्थना सुनी होगी-उसमें हमने अपने कार्यकर्ताओं के सारे गुणों का वर्णन किया है-कार्यकर्ता योग्यता सम्पन्न शरीर से बलिष्ठ होना चाहिए उच्च श्रेणी का, बुद्धिमान और सारी कठिनाईयों से, समस्याओं से रास्ता निकालने वाला, चरित्रवान कार्यकर्ता चाहिये जो अपने शरीर, बल या शक्ति से अपने मकसद पटाने के लिए किसी को बाध्य नहीं करता, जैसे कुछ "दादा" लोग अपने बल के आधार पर मस्तक झुकाना चाहते हैं। हम तो स्पष्ट कहते हैं "सुशील जगदेन नम्र भवेत्।" हम तो ऐसे कार्यकर्ता चाहते हैं कि उनके चरित्र और सुशीलता के सामने समाज स्वयं नतमस्तक हो। यह सारी श्रेष्ठता योग्यता किस लिये? तो व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये नहीं बल्कि भारत माता का नाम संसार में ऊंचा उठे, उज्ज्वल बने। योग्यता क्षमता बहुत है किन्तु दूसरे के गुलाम बनने के लिये तैयार है तो देश ऊंचा नहीं उठेगा, उन्नत नहीं बनेगा। आखिर इस देश का शासन आई० सी० एस० लोग ही तो चलाते थे। वे बुद्धिमान थे इसमें संदेह नहीं पर विदेशियों के हाथों बिके थे अत: केवल बुद्धिमान और क्षमतावान होने से काम नहीं चलेगा। अभी कुछ दिन पहले नेशनल कौंसिल आफ रिसर्च एन्ड ट्रेनिंग नामक एक संस्था ने प्रतिभाशाली छात्रों एवं युवकों को खोज निकालकर इनका सर्वे किया था। ऐसे प्रतिभाशाली छात्रों को २००-३०० रुपया प्रतिमास स्कालर शिप देकर विशेष प्रशिक्षण दिया गया। इनमें से ६० प्रतिशत युवक विदेश जाने की तैयारी में हैं। सारे समाज ने पैसा लगाकर जिन्हें वैज्ञानिक—डाक्टर और इंजीनियर बनाया उनका यह हाल है—देश और समाज के प्रति अपनत्व की, दायित्व की कोई भावना नहीं, यह समाज, यह देश मेरा है, इसकी सेवा के लिए मेरा जीवन समर्पित है इस भावना के अभाव में ही ऐसा दुर्भाग्यजनक चित्र दिखाई देता है। केवल नारे मात्र से मातृभूमि की सेवा नहीं होगी और न केवल जुलूस या मोर्चे निकाल कर ही होगी। इससे अधिक से अधिक हम कोई स्थान पा सकते हैं, किसी यूनियन के पदाधिकारी बन सकते हैं, परन्तु मातृभूमि के लिये जो क्षमता और योग्यता चाहिए-उसके अभाव में देश कभी उन्नति नहीं कर सकेगा।

युवकों के सामने कौन सा लक्ष्य ?

भारत के व्यक्ति के सामने आज कौन सा लक्ष्य है? नौकरी कैसे मिले, अच्छा स्थान मिल जाय। ऐसा ही छोटा सा लक्ष्य लेकर भारत का व्यक्ति चला है। विद्यार्थियों और युवकों के सामने भी कोई महान लक्ष्य है क्या? जब स्वतंत्रता का लक्ष्य था, तब इन्हीं विद्यार्थियों ने, युवकों ने त्याग, और बलिदान के आदर्श प्रस्तुत किये। अभी डेढ़ वर्ष पूर्व देश में जनतंत्र की पुनर्स्थापना के महान परिवर्तन मैंअपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। लक्ष्य-विहीन शक्ति इधर-उधर बिखरी है। वर्षा के

शेष पृष्ठ 29 पर]

कविता

वतन के प्रति

मुझे प्यार है अमन से,
मुझे प्यार है वतन से,
मैंने अपनाया कंटक-पथ,
तुम चुनलो फूल चमन से।

सुधा पिलाने जगती को
मैंने पिया गरल हंस-हंस
भूख मिटाने को जगती की
मैंने भरी आहें हंस-हंस।

मुझे प्यार है गरीब के,
भूख भरे रूदन से।
मुझे प्यार है अमन से,
मुझे प्यार है वतन से।

छोड़ो यह ऋतु सुहानी
नां भलो यह गुलामी
दिल अमर है हमारा
यह वफा की निशानी।

मुझे प्यार है सींखचों के
इस अजाब वतन से,
मुझे प्यार है अमन से,
मुझे प्यार है वतन से।

—धीरेन्द्रपाल सिंह 'मधुर'
गढ़वाल विश्वविद्यालय
श्रीनगर

वैज्ञानिकों का संदेश

(तेईस देशों के दो हजार दो सौ वैज्ञानिकों के हस्ताक्षरों से ११ मई १९७१ को संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्कालीन महामंत्री यू थांट के सामने एक निवेदन प्रस्तुत किया गया था। उस निवेदन को स्वीकार करते हुए महामंत्री ने कहा, "मेरा विश्वास है कि पृथ्वी आज जिस भौतिक और जैविक सन्तुलन की आवश्यकता के बीच में झूल रही है उससे मनुष्य जाति अवगत हो चुकी है। बिना सोचे-समझे जड़ और चेतन के बीच का सन्तुलन बिगाड़ा न जाये, इस दिशा में अपना आन्तरिक विकास करते हुए हमें सावधान रहना है।'''इसमें सफलता तभी प्राप्त हो सकती है जब संसार के सारे राष्ट्र मिल-जुलकर काम करें।

वैज्ञानिकों का यह सन्देश फ्रांस के 'मेन्टन' नामक स्थान पर तैयार किया गया था और इसलिए यह आमतौर से 'मेन्टन सन्देश' के नाम से प्रसिद्ध है। सम्मेलन का आयोजन 'डाव डॉंग' नामक एक शान्ति संस्था ने किया था। 'डाव डॉंग' एक बहुत ही प्राचीन चीनी शब्द है और इसका अर्थ होता है घनिष्ठ रूप से मिली-जुली दुनिया।

जिन दो हजार दो सौ वैज्ञानिकों ने 'मेन्टन सन्देश' पर हस्ताक्षर किये थे उनमें चार नोबुल-पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक—साल-वेडोर लूरिया, जेकस मोनोद, अल्बर्ट सेन्ट योर्गी और जार्ज वाल्ड के अतिरिक्त जी रोस्टेन्ट, सर जूलियन हक्सले, थीर हेयेरडल, पॉल यहरिच, मार्गरेट मीड, रेने ड्युमांट, लार्ड रिचीकेल्डर, तुतारो यामामोतो, जेरार्डो बुडोवस्की, हैन्रिक बेल्ट्रान और मौ० जकी बरकत जैसे ख्यातिनामा वैज्ञानिक शामिल थे। 'मेन्टन सन्देश' नीचे अविकल रूप में दिया जा रहा है।—सं०)

पृथ्वीग्रह के हमारे साढ़े तीन अरब पड़ोसियो !

स्थान, संस्कृति, भाषा, रहन-सहन, राजनैतिक और धार्मिक निष्ठाओं में पर्याप्त भिन्नता के होते हुए भी हम सब अपने काल के एक सर्वनिष्ट और अभूतपूर्व खतरे के कारण एक हो गये हैं। यह एक ऐसा खतरा है जिसका जन्म अनेक कारणों से मिलकर हुआ है। इनमें से एक-एक कारण इतना जबरदस्त है जो हमारे सामने समस्याओं का अम्बार खड़ा कर देता है। यह सारे कारण मिलकर तो ऐसा विराट् रूप धारण लेते हैं कि इनसे केवल मानवीय कष्ट का अपरिमित विस्तार ही नहीं होता, बल्कि निकट भविष्य में ही पूरी मानव-जाति का नाश सिद्ध होते दिखता है। यदि परिस्थिति ऐसी ही बनी रही तो पृथ्वी तल से मानव नाम की वस्तु लुप्त हो जायेगी। जड़ और चेतन प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाले यह तो नहीं कह सकते कि इनमें से कौन-सी समस्याएँ किस विशिष्ट ढंग से हल की जा सकती हैं। किन्तु हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि समस्याएँ हैं; और हमारा विश्वास है कि वे सार्वभौमिक हैं; परस्पर सम्बद्ध हैं और इनका हल तभी सम्भव है जब हम लोग अपने सीमित स्वार्थों को तिलांजलि देकर सर्वसामान्य खतरे को दूर करने की आवश्यकता समझें।

समस्याएँ

पहली समस्या वातावरण के विदूषण की है। हमारा वातावरण अत्यन्त तीव्र गति से जैसा पहले कभी नहीं हुआ था, दूषित होता चला जा रहा है। वातावरण का यह विदूषीकरण संसार के कुछ भागों में कम स्पष्ट है, कुछ ज्यादा। जहाँ यह अधिक स्पष्ट है, वहाँ के लोग इस खराबी के प्रति अपने मन की आशंकाएँ अभिव्यक्त करने लगे हैं। जहाँ खराबी व्यापक नहीं है वहाँ लोग उसे महत्व नहीं देते और मानते हैं कि कष्ट की घड़ी अभी बहुत दूर है।

किन्तु हमें याद रखना चाहिए कि सारा वातावरण अखंड है, जो एक हिस्से में होता है उसका दूसरे हिस्से में असर पड़े बिना नहीं रह सकता। विदूषीकरण का सबसे उजागर उदाहरण संसार-भर के भोज्य-पदार्थों में पारा, सीसा, रांगा, डी० डी० टी० और इसी प्रकार के अन्य फ्लुराइड-युक्त मिश्रणों का पाया जाना है। ये तत्व भोजन के द्वारा जीव-जन्तुओं के शरीर में पहुँच रहे हैं—यह बात इस तथ्य से एकदम स्पष्ट हो जाती है कि जो पक्षी इन पदार्थों के उपयोग-स्थान से बहुत दूर रहते हैं, उनके शरीर में भी ये पाये जा रहे हैं। दूर-दूर के पशु-पक्षियों में इस प्रकार के जहर का पाया जाना जाहिर करता है कि वातावरण एक है।

उद्योग-धन्धों से भरपूर बस्तियों में कारखानों से निकलने वाला धुआँ तेल और अन्य इसी प्रकार का कचरा देशों में बहने वाली स्वच्छ पानी की धाराओं को दूषित कर रहा है। सभी जानते हैं कि कल-कारखानों और घरों से निकलने वाली गन्दगी धरती के भीतर-भीतर प्रणालियाँ बनाकर नदियों और समुद्रों में मिला दी जाती है और इस प्रकार प्राकृतिक क्रम का वह स्वाभाविक क्रम टूट जाता है जो गन्दगी को फिर से उपयोगी बनाने को फिर से उपयोगी बनाने में समर्थ है। आज हमारे शहरों पर धुएँ के बादल छाये रहते हैं और इन बादलों को वाहन बनाकर सैकड़ों मील तक जहरीले कीटाणु हरे-भरे वृक्षों को सुखा कर ठूंठ बना देते हैं।

इससे भी भयानक है हमारा परिणाम सोचे बिना निरन्तर यान्त्रिक प्रगति के लिए नये-नये तरीके अपनाना। हमने आवाज की गति से भी अधिक तेज यानों का निर्माण किया है और आणविक-शक्ति से चलने वाले कारखाने बनाये हैं। यह सब करते हुए हमने एक क्षण के लिए भी नहीं सोचा कि वातावरण पर इसका दूरगामी प्रभाव क्या होगा ?

दूसरी समस्या प्राकृतिक साधनों की कमी है। यद्यपि पृथ्वी और उसके साधन निश्चित हैं और एक हद तक परिमित हैं, औद्योगिक और इसी प्रकार के अन्य प्रतिष्ठान पृथ्वी के अनेक ऐसे पदार्थों का निर्ममता से उपयोग किये डाल रहे हैं जिन्हें हम पैदा नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, हम जिन पदार्थों को पैदा कर सकते हैं उन्हें भी निःसत्व बनाने में लगे हैं। औद्योगीकरण के दीवाने केवल अपने देश ही नहीं दूसरे देशों की साधन सम्पत्ति को को भी असावधानी के साथ अपने मन का माल तैयार करने में काम में लाते हुए आगा-पीछा नहीं करते और न यह सोचते हैं कि उन देशों में रहने वाले आज के लोग और आने की पीढ़ियों का उन साधनों को खोकर क्या हाल हो जायेगा।

वैज्ञानिक आधार पर विकास करने वाले समाज के लिए जो पदार्थ बहुत महत्वपूर्ण हैं, उनमें से कुछ पदार्थ धीरे-धीरे परिमाण में कम होते चले जा रहे हैं; और इसलिए कोशिश की जा रही है कि इन पदार्थों या धातुओं को धरती के बजाय समुद्र खोदकर निकाला जाय।

याद रखना चाहिए कि ऐसे प्रयत्न केवल अर्थ और शक्ति की दृष्टि से ही जबरदस्त खर्च का कारण सिद्ध नहीं होंगे, बल्कि उनसे समुद्र में रहने वाले प्राणियों और वहां की वनस्पतियों पर भी कैसा असर पड़ेगा कहा नहीं जा सकता। सभी जानते हैं कि समुद्र प्रोटीन पदार्थों को देने वाला हमारा सबसे बड़ा साधन है। हमारे बिना सोचे-समझे किये गये प्रयत्नों से यह साधन सम्पन्नता कम होगी, इसमें सन्देहनहीं है और फिर हम इस काम को करने में जिस ऊर्जा-शक्ति का प्रयोग करेंगे वह कहां से आयेगी ? ऊर्जा-शक्ति का ह्रास हमारे सामने काफी विचारणीय रूप धारण कर चुका है।

संसार की जितनी भी उपजाऊ और सिंचाई के योग्य कृषि-योग्य भूमि है उस पर आज खेती की जा रही है। किन्तु हम देखते हैं कि प्रत्येक वर्ष उद्योग-प्रधान देशों में ऐसी लाखों एकड़ जमीन में खेती बन्द करके उस पर कल-कारखाने बनाये जाते हैं, सड़कें बनती हैं और मनोरंजन के लिए बगीचे और गाड़ियां खड़ी करने के लिए मैदान। जंगल कट रहे हैं, नदियों पर बांध बन रहे हैं। हर बार जमीन पर एक ही फसल उगाई जा रही है, कीटाणु-नाशक तरह-तरह के द्रव्य काम में लाये जा रहे हैं। अनेक कारणों से दूर-दूर तक जमीन की उपजाऊ सतह खोदकर फेंकी जा रही है यदि गिनाने बैठें तो इसी प्रकार के कितने ही ह्रस्व-दृष्टि से किये गए अनुत्पादक काम गिनाये जा सकते हैं जिनके कारण वातावरण में असन्तुलन पैदा हो रहा है और जिसके कारण दुनिया के बड़े-बड़े भूभाग अपनी उत्पादन-शक्ति खोते चले जा रहे हैं।

परिस्थिति चाहे जितनी अच्छी क्यों न रहे, जिस गति से आज वस्तुओं का उपभोग चला है उस गति से उनका उत्पादन इस धरती पर सम्भव नहीं है। उद्योग-प्रधान देशों में उपभोक्ता वस्तुओं का जैसा उपयोग कर रहे हैं उसे अगर हम जबरदस्त गरीबी में दिन काटने वाले लोगों के उपभोग के साथ मिलायें तो यह स्पष्ट हो जावेगा कि यदि परिस्थिति ऐसी ही बनी रही तो यह संघर्ष का स्रोत बनेगा और खून-खराबी होगी।

जनसंख्या, घनी आबादी और भुखमरी — आंकड़ों के अनुसार आज धरती की आबादी कोई साढ़े तीन अरब है। जनसंख्या के नियोजन के उपायों को जितनी सफलता मिली है यदि उस पर विचार कर लें तो ऐसा माना गया है कि सन् दो हजार ईस्वी तक पृथ्वी पर मनुष्य संख्या साढ़े छः अरब हो जायेगी। कुछ इस आशय की आशावादी भविष्यवाणियां भी की गई हैं कि विज्ञान के विकास और तकनीकी प्रगति के कारण नैसर्गिक साधनों को अधिकाधिक खोजा, ढूंढा और विकसित किया जा सकेगा, जिससे भविष्य की आबादी हो जाने पर भोजन, वस्त्र और निवास की व्यवस्था कठिन नहीं जान पड़ेगी।

इस आशा के बावजूद आज की परिस्थिति में तो दुनिया के दो तिहाई लोग पूरा भोजन नहीं पाते और भोजन और शक्ति पहुंचाने वाले पदार्थों की खोज के बावजूद भी व्यापक अकाल की सम्भावना सामने खड़ी है। वातावरण का विदूषण और उसके कारण उत्पन्न असन्तुलन का असर भोजन सामग्री के स्रोतों पर भी बुरा पड़ रहा है और लोगों को शक्ति देने के लिए जो-जो उपाय किये जाते हैं वे उपाय कई बार वातावरण को और दूषित बनाने लगते हैं। इसके आबादी के आंकड़े निर्भ्रान्त नहीं हैं, उनसे गलतफहमी हो सकती है; क्योंकि अलग-अलग देशों में आहार का प्रमाण अलग-अलग है। केवल व्यक्तियों की गिनती से समूचे विश्व के आहार का परिमाण निश्चित कर सकना भ्रान्तिपूर्ण है। उदाहरण के लिए आज जो बालक संयुक्त राष्ट्र संघ में उत्पन्न होता है अपने समस्त जीवन में भारत में होने वाले बच्चे से कोई बीस-गुना अधिक आहार लेता है और साथ ही वातावरण को कोई पचास-गुना अधिक दूषित करता है। इस तरह हम समझ सकते हैं कि उद्योग-प्रधान देश आहार करते हैं और वातावरण को भी अधिक दूषित करते हैं, अर्थात् अन्न उत्पादन आदि की समस्या दूसरे देशों की अपेक्षा अधिक बढ़ाते हैं। ये अधिक धने बसे हुए तो होते ही हैं।

वैसे यह कहना बहुत मुश्किल है कि प्रत्येक आदमी को कम से कम कितनी जगह और कितने एकान्त की आवश्यकता है, किन्तु फिर भी यह एक वास्तविक आवश्यकता है और इस पर विचार किया जाना चाहिए। केवल भोजन ही जीवन का सर्वाधिक प्रधान तत्व नहीं है। यदि हम यह मान भी लें कि तकनीक की प्रगति के साथ कृत्रिम खादों का उत्पादन सम्भव हो जावेगा तो भी जिस आबादी बढ़ने के कारण बस्तियों में जो भीड़-भाड़ बढ़ रही है, उसके सामाजिक और वायु-मण्डल सम्बन्धी भयानक असर हुए बिना नहीं रह सकते।

युद्ध—समूचे इतिहास में किसी भी मानवीय गतिविधि की इतनी व्यापक निन्दा नहीं होती जितनी युद्ध की होती है। और इसी प्रकार यह भी सत्य है कि संघर्ष की स्थिति को उत्पन्न करने वाली गतिविधियों भी मानव-समाज में सर्वाधिक प्रबल हैं। विज्ञान जो खोज करता है, वह भी मुख्यतया शस्त्र-अस्त्र के विचार से ही करता है। और बड़े-बड़े विचारक, किस प्रकार युद्ध जीते जा सकते हैं, इसी में राज्यकर्ताओं की मदद करते हैं।

कहा जा सकता है कि हमने अन्तिम शस्त्र हस्तगत कर लिया है; उसकी शक्ति भी हमने समझ ली है। हम उसका उपयोग करते हुए निश्चय ही हिचकचा रहे हैं, किन्तु हमारे मन भय ने ऐसा महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है कि हम अपने शस्त्रागारों को अणु-अस्त्रों से भरने में लगे हुए हैं और सो भी इस तादाद में कि यदि एक भी देश निश्चित कर ले तो उनसे संसार से जीवन को कई बार समाप्त किया जा सकता है। हम बिना सोचे-विचारे लगभग अन्धों की तरह प्रयोगशालाओं और युद्ध-क्षेत्र में कीटाणुओं और रासायनिक आधार पर बने शस्त्रों का प्रयोग करने में लगे हैं। इतने भयानक शस्त्र होते हुए भी हम लोग उन 'छोटे-छोटे' युद्धों को रोकने की दिशा में कोई व्याकुलता जाहिर नहीं करते जो बात की बात में विश्व युद्ध का रूप धारण कर सकते हैं और जिनमें किसी न किसी पक्ष को अणु-अस्त्रों का उपयोग सूझ सकता है। विश्वयुद्ध को बचाने भर से काम नहीं चलेगा। उसके लिए संहारक तैयारी भी बन्द की जानी चाहिए विश्वयुद्ध के लिए तैयार होने में मानव समाज की शक्ति और साधनों का जो अनिश्चय व्यय हो रहा है उसके कारण संसार के त्रस्त और अभावग्रस्त लोग नित्यप्रति अधिक त्रस्त और अभावग्रस्त होते चले जा रहे हैं। यदि विश्व की तैयारियां समाप्त हो जायं तो उन्हीं शक्ति और साधनों का उपयोग इस अत्यन्त काम्य

दिशा में किया जा सकता है।

यह बिल्कुल स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि यह कहना निरर्थक है कि मनुष्य जाति स्वभाव से युद्धप्रिय है और इसलिए युद्ध होते हैं। यदि हम ठीक से देखें तो हमें दिखाई पड़ेगा कि मानव-समाज ने सीमित भौगोलिक क्षेत्रों में शान्तिपूर्ण और स्थायी समाजों की स्थापना करके दिखाई है। मनुष्य-मात्र युद्ध प्रिय नहीं है। वह स्वभाव से शान्तिप्रिय है। कुछ व्यक्ति स्वार्थ-साधन के लिए समाज का इस दिशा में उपयोग करते हैं।

हमारे युग में विश्वयुद्ध के दो प्रमुख कारण हैं; एक कारण है—उद्योगप्रधान देशों और पिछड़े हुए देशों का आर्थिक अन्तर। इस अन्तर के कारण करोड़ों आदमी दरिद्र अवस्था में दिन काटते हैं और फिर उनके मन में जैसे बने, वैसे अपनी स्थिति सुधारने की इच्छा होने लगती है। दूसरा कारण है—शक्ति और अर्थ के क्षेत्र में उन देशों के बीच की स्पर्धा जो अपने स्वार्थ को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है और जो सारे मानव-समाज का ध्यान किये बिना अपने ही राष्ट्र की सुख-सुविधा को बढ़ाते जाना चाहते हैं।

हमने ऊपर जो कुछ कहा है उसे सोचें तो लगता है कि समस्या कदाचित् कोई उपाय ही नहीं है। किन्तु याद रखना चाहिए कि भूतकाल में मानव-जाति ने कई बार अभूतपूर्व बुद्धि, धैर्य, साहस, सहिष्णुता आदि गुणों का परिचय दिया है और इसलिए यह आशा जागती है कि आज जब सर्वनाश ही हमारे सामने चुनौती के रूप में खड़ा है, हम फिर उन्हीं गुणों से काम लेकर समूचे संसार के निस्सार का उपाय खोज निकालेंगे।

करणीय क्या है ?

हमने अभी तक जितना जो कहा वह केवल समस्या को अंशतः सामने रख सकने की इच्छा से कहा है। इस समस्या का हल क्या है, वह हमने अभी नहीं बताया वास्तविकता तो यही है कि हम समस्याओं को पूरी तरह अभी समझे नहीं हैं और उनके निश्चित हलों के बारे में अभी कुछ नहीं कह सकते। इतना ही कहा जा सकता है कि पृथ्वीतल पर रहने वाला प्रत्येक प्राणी कष्ट में है और यदि हम इस ओर ध्यान नहीं देते तो यह कष्ट बढ़ता ही चला जायेगा।

जब १९४० के आसपास संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अणु-शक्ति के विकास के लिए दो अरब रुपया स्वीकृत किया और सारी दुनिया के विशेषज्ञों की मदद से दो वर्ष में इस काम को पूरा करने का निश्चय तो पहली खतरे की घन्टी थी। दो वर्षों में यह काम पूरा हो गया। १९६० के बाद चन्द्र-विजय की स्पर्धा प्रारम्भ हुई और संयुक्त राष्ट्रसंघ ने इस पर दो अरब से लगाकर चार अरब तक के बीच में खर्च किया। संयुक्त राष्ट्रसंघ और सोवियत संघ दोनों एड़ी-चोटी का जोर लगाकर इस प्रतिस्पर्धा में पड़े हैं और दोनों ओर से अरबों रुपया आकाश को छानने में लगाया जा रहा है।

इस बात से कौन इनकार कर सकता है कि प्रयत्नों अर्थात् अणु-अस्त्रों की खोज आकाश की छान-बीन के बजाय आदमी को जीवित बनाये रखने की समस्या अधिक आवश्यक है। जितनी तीव्रता, तत्परता और बेचैनी के साथ बड़े-बड़े राष्ट्र इस नाशकारी क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा कर कर रहे हैं, यदि वैसी ही मनोभावना के साथ वे निर्माण के क्षेत्र में स्पर्धा करें तो आशा की किरणें दिखाई देने लगेंगी। इसमें सन्देह नहीं कि इन क्षेत्रों में किया जाने वाला खर्च उद्योग-प्रधान विकसित देशों को ही करना चाहिए। इसके दो कारण हैं : एक तो यह कि वे इस बोझ को उठाकर चलने में समर्थ हैं और दूसरे यह कि समस्या उत्पन्न हुई है, चाहे वह दारिद्र्य की हो, चाहे वातावरण के विदूषण की, उन्हीं के कारण पैदा हुई है। धरती के साधनों का वे ही सबसे अधिक उपयोग करते हैं और वातावरण को सबसे अधिक विषाक्त भी वे ही बनाते हैं। सभी देशों के विवेकशील, बुद्धिमान और समर्थ व्यक्तियों को हाथ बंटाना है। इसमें सभी क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों की सहायता जरूरी होगी। वे मुक्त-भाव से अपने-अपने राष्ट्र की नीति का विचार किए बिना सहयोग का हाथ बढ़ाएँ। यदि विवेकशील व्यक्तियों ने भी संकुचित राष्ट्रीय दृष्टि से विचार किया तो समस्या कभी हल नहीं होगी। यह इतनी उग्र हो गई है कि अब एक क्षण की देरी भी सर्वनाश का कारण बन सकती है। जब कि ऊपर आविष्कारों के प्रयत्नों को बढ़ाने की दिशा में कदम उठाये जा रहे हैं, उस समय भी हमारी समझ में निम्नलिखित बातें शुरू कर दी जानी चाहिए। हमारा यह दावा नहीं है कि इन उपायों से समस्या पूरी तरह हल हो जायेगी किन्तु हम यह विश्वास अवश्य रखते हैं कि यदि सुझाई गई बातों के मुताबिक चलने की कोशिश हो जाये तो अभी भी विनाश के गर्त में गिरने से बचा जा सकता है।

१. उन सारी तकनीकी खोजों पर पाबंदी लगा दी जाय जिनका हम परिणाम नहीं जानते और जो मनुष्य के जीवन के लिए अनिवार्य नहीं हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि नए-नए शस्त्रों की खोज सुविधाजनक और अतिशय गतिशील वाहनों का निर्माण, नए-नए अपरीक्षित कीटाणु-नाशक द्रव्यों का प्रयोग प्लास्टिक के सामान — सब पर रोक लगा दी जानी चाहिए। इस सूची के अन्तर्गत वे सब अपरीक्षित यांत्रिकी की गतिविधियाँ भी आ जाती हैं जिनमें बिना सोचे समझे नदियों पर बांध डालना, जंगल काटकर बस्तियाँ बनाना और समुद्र-तल में धातु आदि की खोज के लिए खदानें खोदना आदि शामिल है।

२. पृथ्वी के साधन स्रोत तेजी से समाप्त हो रहे हैं इसलिए आवश्यक है कि वायुमंडल को स्वच्छ रखने की दिशा में जो-जो उपाय कारगर सिद्ध हो चुके हैं उन पर अमल किया जाय और इसी प्रकार का उत्पादन रुद्ध किया जाय जिसके कारण धरती की उत्पादन क्षमता का चक्र गतिशील बना रहे। एक बार इन उपायों पर अमल प्रारम्भ हो गया तो अन्तर-राष्ट्रीय पैमाने पर वातावरण को स्वच्छ रखने आदि के विषय में बातचीत और समझौते किये जा सकेंगे। बीच बीच में जितनी बातों पर समझौता हो जायेगा उसे किस तरह आगे बढ़ाया जा सकता है, इस पर भी आगे विचार प्रारम्भ रखा जा सकेगा। हम अभी तो यह भी नहीं जानते (कम से कम पूरी तरह नहीं जानते) कि किस प्रकार की गतिविधि से वातावरण कितना विषाक्त होता है।

३. व्यक्तिगत स्वतंत्रता में बाधा डालेबिना सारी दुनिया में आबादी न बढ़ने देने का प्रयत्न किया जाय। ध्यान रखना चाहिए कि साधन-सम्पन्न वर्ग अपने जीवन-स्तर को कुछ नीचा करें, कम खायें, कम पहनें और इसी तरह आवास के बारे में भी कम जगह घेरें।

[शेष पृष्ठ 19 पर

राज का मोह : त्याग का साहस

□ जैनेंद्र कुमार

भारत की राजनीति इस समय गहरे भंवर में है। इन्दिरा जी के स्वयंवाद को हटा कर जो जनता पार्टी शासन पर आयी, वह मानो अपने पहले दिन से घटकवाद की परेशानियों से निबटने में लगी रही। भारतीय लोकदल के चौधरी चरणसिंह सरकार के बाहर गये, फिर अन्दर आये और अब मालूम होता है कि जिस जनसंघ के सहारे उन्होंने मिलकर उत्तरप्रदेश आदि की सरकारें बनायी थीं, वहां से अब जनसंघ के आदमियों को निकाल देना जरूरी हो गया है।

कांग्रेस में इन्दिराजी की स्वयंवादिता के कारण जो दल शेष रह गया, वह नये राजनैतिक गठबन्धन की बात सोच निकला है। स्वयं जनता पार्टी में तत्व हैं जो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की ओर उस के समर्थन को सहने को तैयार नहीं है। अपेक्षा थी कि चुनाव की प्रक्रिया के अनन्तर जनता पार्टी को स्थिरता और एकता प्राप्त हो सकेगी। वह अपेक्षा टूट चुकी है। चुनाव का मसला आर. एस. एस. के कारण खटाई में है और जनता पार्टी इन दोनों मुद्दों को ले कर स्वयं डगमग है।

स्थिति राजनैतिक संकट तक सीमित रहती तो चिन्ता की बात न थी। पर वह संकट स्वयं राष्ट्र को भंवर में डाल सकता है। आसपास के देशों में घटी घटनाएं आंख खोलने के लिए काफी होनी चाहिए। उन देशों में केवल राजनैतिक उठा-पटक का दौर-दौरा हो चला, बीच में से वे तत्व शून्य हो गये जो स्थिरता दे सकते थे तो बाहर से रिक्त को भरने के लिए हवाएं दौड़ीं और उन देशों की व्यवस्थाओं को ध्वस्त कर गयीं। अफगानिस्तान ईरान, पाकिस्तान कहीं चैन है? व्यवस्था है?

भारत को सावधान रहना है कि कहीं ऐसा रिक्त यहां न पैदा हो जाय कि महाशक्तियों का उसे आखेट बनना पड़े। परिस्थितियां उस ओर जा रही हैं। एक दूसरे की सहायता समाप्त हो गयी है। मानो एक नैतिक शून्य उपजा आ रहा है। वह शून्य झंझावात को बुलाये बिना न रहेगा और लोकतन्त्र के विचार को यहां टूटना होगा।

जनता पार्टी को तानाशाही के विकल्प के रूप में अगर टिकना है और मजबूत बनना है तो आवश्यक है कि उस का कोई घटक सत्ता के मोह से ऊपर उठे और उस प्रतिस्पर्द्धा से अपने को अलग खींच ले। विवाद के केन्द्र में है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ कारण यह कि वह संगठित है, शक्तिशाली है, और जनसंघ के द्वारा यहां की राजनीति के लिए आत्यन्तिक रूप से विचारणीय बन गया है। इन्दिरा गांधी, स्वर्णसिंह, चौधरी चरणसिंह, यहां तक कि जगजीवनराम और चंद्र शेखर की रणनीति में भी ध्यान के लिए हठात वही प्रमुख बन जाता है। मधु लिमये और राजनारायण के नाम कुछ देर के लिए छोड़ भी दिये जा सकते हैं संघ के विरोध में बड़ी और गहरी शिकायत यह है कि वह साम्प्रदायिक है, इसलिए देश की सेक्युलर नीति के लिए भारी खतरा है। गांधी के विरोध में गोडसे का समर्थक रहा है। इत्यादि।

वह जो भी हो लेकिन इस समय राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ही वह संस्था है जिस में राजसत्ता के पदों पर पहुंचने की होड़ नहीं दिखी है। गांधी उस होड़ से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को बचाये रखना चाहते थे स्वराज्य से पहले कांग्रेस मात्र पार्टी नहीं थी। बल्कि मानो देश की आत्मा की, उस की मनोभावना और सत्ता की प्रतीक थी पर उस की दृष्टि स्वराज्य आता देख राज्य में सीमित हो गयी। फिर तो स्वयं में राजसत्ता बन कर क्रमशः वह लोक समर्थन से विहीन और अपने में क्षीण बनती चली गयी। इन्दिरा गांधी तक आकर उस का स्वरूप नंगी सत्ता के रूप में प्रकट हो आया और नौबत आयी कि सन '७७ के चुनाव में एक अभूतपूर्व बहुमत से देश ने शासन के आसन से इसे गिरा दिया और पांच घटकों से बनी मिली-जुली जनता पार्टी को सिंहासनासीन किया।

अब मालूम हो आया है कि जनता पार्टी भी इतनी पार्टी है कि जनता का सम्बल उसे रह नहीं गया है। जयप्रकाश सत्ता से बाहर थे और कुछ डारस था, लेकिन वे स्वास्थ्य के कारण स्वयं असमर्थ हैं और यों भी दल के दलीय नेताओं के लिए काफी अनावश्यक हो गये हैं।

एक मात्र समर्थ वर्ग है राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का जो सत्ता के मोह से और उसकी छिन-झपट से अलग रहकर, अपने ही ढंग से सही, देश के लिए कुछ सोचता और करता रहता है। मैं मानता हूं कि इस दृष्टि से आज के दिन, वह गांधी-नीति के सबसे निकट है। मानना वह मेरा है, इसलिए आसानी से उसे टाल नहीं दिया जाना चाहिए। गांधी विचार के प्रवक्ता के रूप में जैनेंद्र भी एक स्वीकृत व्यक्ति हैं। उस दायित्व को लेकर और सम्भाल कर मैं यह बात कर रहा हूं।

अर्थात भारतीय राजनीति की इस अतिशय रुग्णावस्था से साहस की कुछ आशा की जा सकती है तो संघ से। यदि यह सच है कि संघ सांस्कृतिक संस्था है और अगर यह भी सच है कि जनसंघ उसके प्रभावाधीन है। तो जनसंघ द्वारा परामर्श मिलना चाहिए कि वह प्रतिस्पर्धा की राजनीति से तब तक के लिए बाहर आ जाय जब तक उस राजनीति को विधायक स्वरूप मिले। जनता पार्टी तानाशाही के विकल्प के रूप में भारत को प्राप्त हुई थी। संघ यह बर्दाश्त नहीं करेगा कि उस एक मात्र विकल्प को किसी तरह निर्बल होने दिया जाय। दूसरे शब्दों में जनसंघ के तत्व बाहर से जनता पार्टी को अपना पूरा समर्थन और बल देते रहेंगे सिर्फ वे चुनावी स्पर्धाओं से तटस्थ रहेंगे। इस बीच रा. स्व. संघ में लगभग विलीन होकर वे प्राणप्रण से रचनाकार्यों के प्रति समर्पित रहेंगे। ऐसा होगा तो देखा जायगा कि अगले आमचुनाव तक पर्याप्त लोकशिक्षण हुआ है और नीचे से सचमुच एक लोकशक्ति जैसी वस्तु उदय में आ रही है। तब नैतिक शून्य बनने का खतरा मिट जायगा और सच्ची एवं समर्थ गुटनिरपेक्षता अस्तित्व में आ सकेगी अभी तो भारत पिछलग्गू देश है। किन्तु जनमानस में राजसत्ता गौण और लोक सत्ता प्रधान होकर जग सकी तो राज-

नीति को वह विधायक स्वरूप प्राप्त होगा जिससे भारत महाशक्तियों के समक्ष एक नयी सामरिक की जगह नैतिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत हो आए। इस प्रकार गांधी जो इस समय देश में निष्प्रभ और निष्क्रिय हुआ है। उसका (उपयोग इस उसके लिए राजनैतिक पूजी बनने भर का रह गया है) वह अपनी पूरी सम्भावनाओं के साथ चमक आयगा और जिस हिंसा की रणनीति के भरोसे विश्वव्यवस्था आज भयावह बन आई है उसको एक विकल्प के दर्शन होंगे।

अभी तो रूस और अमेरिका बार-बार कोशिश करने पर भी किसी समझौते पर आ नहीं पाते हैं। यदि समझौता सम्भव हुआ भी तो वह अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों के मिल बांट का होगा। वैसे समझौते का परिणाम मानव के हित में मुक्ति का नहीं, घोर बन्धन का हो जायगा।

लोकतन्त्र का इतिहास बहुत उज्जवल नहीं है आगे के लिए भी वह विशेष आशाप्रद नहीं दिखता है। जगह-जगह सैन्यशाही उसकी जगह ले रही हैं। मेरा विश्वास है कि भारत की पम्परा में से ही वह लोकतन्त्र जन्म पा सकेगा जो एक ओर यदि सेनाशाही के लिए परिपूर्ण उत्तर होगा तो दूसरी ओर आज की लंगड़ी और अधूरी संसदीय लोकतन्त्र के लिए भी अनुकरणीय उदाहरण होगा।□

आज देश को एक ही आवश्यकता है

□ राष्ट्र प्रकाश

अभी कुछ दिन पहले श्री रामाकृष्ण मिशन के प्रमुख स्वामी रंगानाथानन्द जी का सार गर्भित भाषण सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। स्वामी जी एकात्म-मानववाद के सामाजिक व शैक्षणिक पक्ष पर बोल रहे हैं। अपने भाषण में उन्होंने बताया कि भारत का दर्शन बहुत महान है। अतीत में हम बहुत ही सम्पन्न व वैचारिक दृष्टि से पूर्णता की ओर पहुँच गये थे। भाषण के अंत में एक श्रोता ने प्रश्न किया कि आज आप कह रहे हैं कि भारत का दर्शन बहुत ही उच्च है—लेकिन आज देश में भुखमरी है—अनेक समस्याएँ हैं—फिर उस उच्च दर्शन से हम लाभ क्यों नहीं उठाते हैं—इसका उत्तर देते हुए स्वामी जी ने कहा कि हम भारतीय बहुत अच्छे गृहस्थी तो हैं लेकिन हम अच्छे नागरिक नहीं है। उनके कहने का अभिप्रायः जो उन्होंने ने बाद में विस्तृत रूप में बताया कि हम अपने व्यक्तिगत परिवार तक सीमित है। हम अपने परिवार के सदस्यों माता-पिता, भाई-बहन, पत्नी व बच्चों की तो पर्याप्त चिन्ता करते हैं। लेकिन जो भाव हमारा अपने परिवार वालों के साथ है—वैसा भाव अपने पड़ौसी व समाज के अन्य बन्धुओं के साथ नहीं है—आज हमें इसी भाव को जागृत करने की आवश्यकता है। इस भाव में सब समस्याओं को समाधान करने की क्षमता है। हम विचार करें—कि कैसे सामाजिक भाव और राष्ट्रीय भाव पैदा किया जा सकता है। पिछले दिनों देश के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री मोरार जी भाई ने भी एक स्थान पर बोलते हुए कहा था कि हमारी शिक्षा ऐसी हो कि उसमें से सामाजिक भाव पैदा हों यह देश मेरा है—ये सब समाज के बन्धु मेरे ही भाई हैं इनका सुख-दुख मेरा है। यदि अपने समाज के सभी नागरिकों में इस भाव का उदय हम कर पायें—तो हम पायेंगे कि फिर कोई व्यक्ति मिलावट नहीं करेगा, बेईमानी और भ्रष्टाचार स्वयं ही समाप्त होता नजर आएगा। अब हमने भ्रातृत्व का भाव पैदा कर लिया है—तो फिर एक दूसरे को धोखा देना भी बन्द हो जाएगा—फिर हम दवाई नकली नहीं बेचेंगे, फिर हम हल्दी में मिलावट नहीं करेंगे। क्योंकि हम सबमें बन्धुभाव जाग्रत होने के बाद, एक दूसरे का हित हो—यह भाव काम करेगा—नाकि यह भाव है कि एक दूसरे को नुकसान पहुँचाना है।

देश में उत्पन्न हुई विकट परिस्थिति अर्थात विदेशी आक्रमण, बाढ़-अकाल से उत्पन्न हुई स्थिति में हमने अपने इस सामाजिक भाव को राष्ट्रीय भावना तक पहुँचा दिया है। "राष्ट्रीय चरित्र" जिसको संज्ञा दी गई है—ऐसा भाव और प्रेरणा मंत्र है जिससे कोई भी राष्ट्र खड़ा हो सकता है—जापान जैसा देश इसका हमारे सामने प्रत्यक्ष उदाहरण है कि—द्वितीय महायुद्ध के समय जापान को पर्याप्त हानि हुई थी—लेकिन आज हर दृष्टि से जापान सब देशों के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है। विशेषकर युद्ध के समय चाहे फिर वह युद्ध चीन से या पाकिस्तान से लड़ा गया हो हमने अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्य को निभाया है। उत्तर में हुये हमले को कन्या कुमारी तक महसूस किया गया—पूरा देश एक साथ खड़ा हो गया—जो विकृति मुस्लिम व अंग्रेजों के आक्रमण के समय हम में "घर" कर गयी थी—जिसके कारण अनेक समय तक पतन और संघर्ष का पथ हमें अपनाना पड़ा—उसको हमने तिलांजलि दे दी और इसी का परिणाम हुआ कि देश की विजय हुई। आज देश में उसी भाव की आवश्यकता है—जो हम सबमें युद्ध अर्थात विदेशी आक्रमण के समय काम करता है कि फिर हम हड़ताल-धरने-मांगों के लिए प्रदर्शन करना बन्द कर देते हैं। मिलों व फैक्टरियों का उत्पादन बढ़ाने में लग जाते हैं। अपने कर्त्तव्य का निर्वाह केवल पूरा ही नहीं करते हैं बल्कि ८ घंटे के बजाय १०-१२ घंटे भी अधिक काम करते है। देश में परिवर्तन अर्थात राष्ट्रीय जीवन मूल्यों की स्थापना की आवश्यकता देश का हर व्यक्ति काफी तेजी से महसूस करता है, और कर रहा है इसलिए हर व्यक्ति का दायित्व हो जाता है कि वह अपनी कथनी और करनी को एक करदे—अपने छोटे-मोटे राजनीतिक या अन्य मतभेदों को भुला दे और भारत के निर्माण में फिर से अपने आपको जुटा दे, सारा कर्त्तव्य या जिम्मेवारी केवल सरकार की है इन मूल्यों में भी बदले की आवश्यकता काफी तेजी से महसूस की जा रही है—तब समाज के व्यक्ति-व्यक्ति के बदले की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी—तो निश्चित रूप से सरकार में भी बदल हो जाएगी—क्योंकि सरकार में भी जो लोग पहुँचे होंगे वे समाज के बीच में से ही होंगे। समाज बदलने से सरकार भी बदलेगी। सरकार में जो लोग पहुँच गये हैं स्वाभाविक रूप से उनका दायित्व अधिक हो जाता है,

शेष पृष्ठ 19 पर

विशेष रिपोर्ट झारखंड आंदोलन :

पृथकतावादी तत्वों का विश्लेषण

☐ प्रवीण "बागी" हजारीबाग

छोटा नागपुर से होकर गुजरने वाली कुछ बसों पर तथा शहरों के मकानों एवं दुकानों पर ये नारे अंकित है—"झारखण्ड हमारा है, हम इसे लेकर रहेंगे, छोटा नागपुर को बिहार से अलग करो" आदि यह कोई नई बात नहीं है झारखंड अन्दोलन एक लम्बे समय से चल रहा है। कभी जोर पकड़ लेता है तो कभी मृतप्राय हो जाता है। यह आन्दोलन क्यों चल रहा है? इसे कौन लोग चला रहे है?

झारखंड राज्य के माँग का आरम्भ अँग्रेजों के काल से हुआ। इसका एक लम्बा इतिहास है। सर्वप्रथम 1938 में राँची के राव साहब बंदीराम उरांव ने 'छोटा नागपुर उन्नति समाज' के नाम से एक समिति बनाई और जब साइमन कमीशन भारत आया तो रायसाहब ने कमीशन का ध्यान छोटा नागपुर को अलग प्रांत बनाने की ओर आकृष्ट किया. रायसाहब को अँग्रेजों की चाटुकारिता के बदले 'रायसाहब की पदवी प्रदान की गई थी। उन्होंने अंग्रेजों के इशारे पर यह आन्दोलन खड़ा किया था उस समय इस क्षेत्र में राष्ट्र-व्यापी शक्तियों के नेतृत्व में देश की स्वतन्त्रता के लिए जोरदार आन्दोलन चल रहे थे। अँग्रेजों ने उस आन्दोलन को कमजोर करने के लिए यह चाल चली थी।

रायसाहब ठीक ढंग से झारखंड आन्दोलन को गति प्रदान नहीं कर पा रहे थे अतः अब अँग्रेजों के द्वारा इस क्षेत्र में श्री इग्नेस बेक को लाया गया। बेक साहब भी अँग्रेजों के प्यारे थे तथा इसाई बन गये, बेक साहब ने इस क्षेत्र में इसाईयों द्वारा संचालित उन्नति समाज, किसान सभा तथा कैथोलिक सभा को मिलाकर आदिवासी महासभा की स्थापना की। आदिवासी महासभा का मुख्य लक्ष्य झारखंड राज्य की स्थापना करना तथा "दिकुओं" (बाहरी लोगों) से आदिवासियों की रक्षा करना था। एक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि गैर आदिवासी भारतीयों को महासभा ने 'दिकु' करार दिया था, परन्तु अँग्रेज उनके लिए 'दिकु' नहीं थे, यह एक हास्यापद स्थिति थी। इससे स्पष्ट है कि महासभा झारखंड प्रदेश स्थापित हो जाने के बाद उसे स्वतंत्र प्रदेश घोषित करने का स्वप्न देख रही थी।

1938 में श्री जयपाल सिंह ने इस अन्दोलन की बागडोर सम्भाली जयपाल सिंह जी की पत्नी खुद दिकु (बाहरी) थी। आदिवासी महासभा का बिल्ला लगाकर तथा आदिवासियों की तथाकथित दुर्दशा पर घड़ियाल आँसू बहाकर जब जयपाल सिंह ने अपनी इमेज आदिवासियों के मसीहा के रूप में बना ली तो महासभा से अलग होकर उन्होंने झारखंड पार्टी का निर्माण किया। 1952 के आम चुनाव में जब झारखंड पार्टी ने 32 सीट जीतकर विधान सभा (बिहार) में प्रमुख विरोधी दल का दर्जा प्राप्त किया और जयपाल सिंह को सरकारी समितियों में प्रमुखता प्रदान की जाने लगी तो वे आदिवासियों के हितकी बात भूल गये, क्योंकि उनका अपना हित पूरा हो चुका था। उनके बाद के आदिवासी नेताओं ने भी इसी परम्परा को कायम जो रखा। आज तक चली आ रही है।

जयपाल सिंह की मृत्यु के बाद आन्दोलन का नेतृत्व निरल ई होरो ने संभाला है। होरो साहब ने प्रस्तावित झारखंड प्रदेश की सीमा में वृद्धि की है। पहले सिर्फ छोटा नागपुर एवं संथाल परगना को ही झारखंड प्रांत में शामिल किया गया था। परन्तु होरो साहब बड़े प्रांत का मुख्यमंत्री बनना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने छोटा नागपुर और संथाल परगना के अतिरिक्त मध्य प्रदेश के दो जिलों-सरगुजा और रायगढ़, उड़ीसा के चार जिलों-मयूरगंज, क्योंझर, सुन्दरगढ़' सम्बलपुर। तथा पश्चिम बंगाल के तीन जिलों—पुरुलिया' मिदनापुर और बाकुड़ा को भी अपने प्रस्तावित झारखंड प्रांत के नक्शे में शामिल कर लिया है। ऐसा करने के पीछे एक और कारण है कि होरो साहब इस आन्दोलन को अन्य प्रांतो में फैलाकर, क्षेत्रिय स्तर से राष्ट्रीय स्तर के नेता बनना चाहते हैं। किन्तु उनकी यह मंशा सफल होती नहीं दिख पड़ती, क्योंकि अन्य राज्य के आदिवासियों का सहयोग उन्हें नहीं मिल रहा है।

एक ओर तो होरो आदिवासियों के हित की बात करते हैं। दूसरी ओर नगर के व्यापारी वर्ग तथा पूँजीपति वर्ग के पास धमकी भरे पत्र आते हैं और उन्हें धमका कर आन्दोलन के नाम पर लम्बी रकमें वसूली जाती है। मांग की पूर्ति नहीं करने पर भयंकर परिणाम की चेतावनी दी जाती है। पूँजीपति वर्ग डर के मारे पुलिस में रिपोर्ट भी नहीं करते। अब तो पत्रों में यह भी दावा किया जाता है कि सरकारी अधिकारी एवं पुलिस अफसरों का भी उन्हें सहयोग प्राप्त है होरो एक ओर आंदोलन को अहिंसा एवं शांतिपूर्ण बनाये रखना चाहते हैं, वहीं दूसरी ओर वह अहिंसक आन्दोलन की कोई गारंटी भी नहीं देना चाहते।

होरो का कहना है कि इस आन्दोलन को व्यापक जनसमर्थन प्राप्त है। परन्तु उन्हें कितना जनसमर्थन प्राप्त है इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1977 के लोकसभा के चुनाव में खुद होरो साहब राष्ट्रवादी विचारधारा के श्री करिया मुंडा (केन्द्रीय इस्पात एवं खान राज्यमंत्री) के हाथों बुरी तरह पराजित हुए। श्री मुंडा इस आन्दोलन के विरोधी हैं।

1977 में छोटा नागपुर की जनता ने आन्दोलन के नेताओं को कब्र में दफना दिया था। परन्तु अब इन्दिराकांग्रेस ने उन्हें कब्र से निकाल कर फिर से खड़ा किया है। अब यह आन्दोलन पूर्णतया कांग्रेस (आई) द्वारा

चलाया जा रहा है।

इस आन्दोलन की एक और विशेषता यह है कि अब तक इसके जितने भी नेता हुए (एकाध अपवादों को छोड़कर) सभी ईसाई हुए। उन्हें ही इस क्षेत्र के आदिवासियों के हित का ख्याल सबसे ज्यादा है। ईसाई मिशनरियां इस क्षेत्र में अपना जाल फैलाये बैठी है, जिनमें भोले-भाले आदिवासी फँस जाते हैं। ये मिशनरियां करोड़ो रुपये विदेशों से प्राप्त कर इस क्षेत्र में लगा रही है भला किसी विदेशी शक्ति को भारत के विकास की चिन्ता क्यों? जबकि बदले में उसे कुछ मिलने वाला नहीं इससे स्पष्ट हो जाता है कि ये ईसाई मिशनरियां देश की एकता और अखंडता को भंग करने की साजिश में लगी है। सरकार द्वारा अविलम्ब मिशनरियों की राष्ट्र विरोधी हरकतों पर रोक लगायी जानी चाहिये।

झारखंड आन्दोलन कई गुटों में बँट गया है। किसी गुटके नेता चियोदोर बोदरा है, तो किसी के बागुन सुम्बरई इसी प्रकार सुशील कुमार बागे और जहानआरा जयपाल सिंह (जयपाल सिंह की पत्नी एवं कांग्रेस आई की नेता) के भी अलग-अलग गुट है। इस बटवारे से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह आन्दोलन आदिवासियों के हितों की लड़ाई नहीं, बल्कि चंद लोगों के स्वार्थों की लड़ाई है।

इस क्षेत्र के आदिवासी ईहुत भोले-भाले एवं सीधे है। फलतः उन्हें कोई भी आसानी से बहका और फुसला सकता है। इस क्षेत्र के गैर ईसाई आदिवासी नेताओं ने कभी भी इस आन्दोलन का साथ नहीं दिया। इस क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के सेवा कार्यों की निश्चित रुप से सराहना करनी होगी। उनके कार्यों के फलस्वरुप मिशनरियों के फैलाव पर बहुत हद तक रोक लगी है। फिर भी सरकार को इस ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए और विदेशी पैसे पर पलने वाली मिशनरियों तथा अन्य राष्ट्र विरोधी तत्वों से सख्ती से निपटाना चाहिये, भविष्य में फिर कोई राष्ट्रविरोधी तत्व इस प्रकार राष्ट्र की अखंडता तथा शांति व्यवस्था को भंग करने की जुर्रत न करे। तथा पृथकतावादी तत्व फिर सिर न उठायें। इस कार्य में इस क्षेत्र की जनता का पूर्ण सहयोग सरकार को प्राप्त होगा।□

पृष्ठ 15 का शेष]

इन छोटे-छोटे किन्तु महत्वपूर्ण उपायों से अन्न और दूसरी सामग्री का वितरण न्यायपूर्ण दिशा पकड़ सकेगा और जो नितान्त अभावग्रस्त है उन्हें राहत मिलनी शुरू हो जायेगी।

४ युद्ध को समाप्त करने के विषय में राष्ट्रों के बीच समझौता एक बहुत कठिन बात है किन्तु फिर भी युद्ध को समाप्त करने के तरीकों पर विचार किया जाना चाहिए। राष्ट्रों के पास जो अणु अस्त्र इकट्ठा है, उन्हें क्रमशः नष्ट किया जाना चाहिए और उनके पास जो रासायनिक और कीटाणु-अस्त्र हैं, उन्हें भी एकदम समाप्त कर देना चाहिए। यदि विश्व-युद्ध हुआ तो उसके परिणाम एकदम होंगे और इतने भयानक होंगे कि फिर उन पर कोई काबू नहीं पा सकेगा। अतएव यह नितान्त आवश्यक है कि व्यक्ति और छोटे-बड़े समुदाय विज्ञान की उन गतिविधियों में हाथ बँटाने और खोज करने से इनकार कर दें जिनका परिणाम मनुष्य-जाति को समाप्त करने की दिशा में किया जा सकता है।

५. पृथ्वी पहले बहुत लम्बी-चौड़ी मानी जाती थी। अब यह मानना चाहिए कि यह बहुत ही छोटी जगह है। हम एक बहुत ही बँधे-बँधाए तरीके से एक बिल्कुल ही लाचार-दुनिया में रह रहे हैं। हमारा और आने वाली पीढ़ियों का जीवन एक-दूसरे पर किसी भी जमाने से अधिक आधारित हो चुका है। आज सारी दुनिया अक्षरशः एक कुटुम्ब हो गयी है। दूर-दूर के देश विज्ञान की शक्ति के कारण बिल्कुल नजदीक के बन गये हैं और इसलिए जो चीजें हमें विभक्त करती हैं हम उन्हें केवल बिल्कुल नगण्य मानें और जो चीजें हमें जोड़ती है उन्हें महत्वपूर्ण मानें। परस्परावलम्बन और सार्वभौम-भय जोड़ने वाली चीजें हैं। हम इन्हें हाजिर-नाजिर रखकर चलें-फिरें, सोचें-विचारें और काम करें।

हमारा विश्वास है कि अपने मतभेदों और अन्य भेदों से ऊपर उठकर ही अपनी धरती और अपने घर को बचा सकते हैं। वातावरण का विदूषण, भूखमरी, बढ़ती हुई जनसंख्या और युद्ध जैसी समस्याओं के हल ढूँढना कदाचित् आसान है, किन्तु वह मानस तैयार करना जो सबके भले के विषय में सोचने लगे इस सबसे भी बढ़कर कठिन है। इसकी शुरुआत तो एकदम कर देनी चाहिए। व्यक्ति व्यक्ति के मन में पारस्परिक प्रेम उत्पन्न करना हम सबका काम है। इस काम को हर आदमी तत्काल शुरू कर दे। आगे चलकर हमारे तत्काल प्रारम्भ किये गए प्रयत्न महत्वपूर्ण फलों के निधान बनेंगे।□

पृष्ठ 17 का शेष]

क्योंकि समाज में उनका एक स्थान बना होता है, उनका जीवन आदर्श हो तो समाज परिवर्तन की प्रक्रिया काफी तेजी के साथ महसूस की जा सकती है। सरकार में बैठे हुए व्यक्ति (समाज में से ही गये हुये है) अपनी कथनी और करनी को एक कर दे, यह परिवर्तन की सबसे महत्ती आवश्यकता है। केवल विचारों में राष्ट्र प्रेम या समाज के दर्द को पहचानने की गम्भीरता से काम नहीं चलेगा। बल्कि उसको कार्य में परिणित करना होगा। कर्म अर्थात कार्य क्षेत्र में उसका स्पष्ट दर्शन होना अति आवश्यक है। राष्ट्रीय चरित्र (Nationel Character) की कसौटी भी यही है कि हम जहाँ भी है, अर्थात सरकारी नौकरी में है, दुकनदारा है, मजदूर है, व्यवसाय करते हैं, पत्रकार-वकील, इन्जीनियर, डाक्टर, प्राध्यापक है। अपनी जिम्मेवारी को पूरी मेहनत व ईमानदारी से पूरा करे। अपने कर्तव्य का निर्वाह करना ही राष्ट्र की सबसे बड़ी सेवा है।

संसार का इतिहासबता रहा है कि जिस समाज और राष्ट्र ने भी अपने राष्ट्रीय भाव व चरित्र को जगा लिया है। वह आज सबसे आगे की श्रेणी में है। केवल दूसरों के उदाहरण ही हम न देते जाए, स्वयं उदाहरण बनने के लिए कटिबद्ध हो—□

६ मई : आद्य शंकराचार्य की जयन्ती के अवसर पर

□ पं० दीनदयाल उपाध्याय

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य का जन्म उस समय में हुआ जब बौद्ध धर्म का ह्रास हो रहा था। धर्म के नाम पर अनाचार फैल रहा था। बौद्ध धर्म को राज्याश्रय देने वाली केन्द्रीय सत्ता निर्बल हो रही थी। अनेक वर्षों तक राज्याश्रय का उपभोक्ता होने के परिणाम-स्वरूप सत्ता की चाट बौद्धों को लग चुकी थी। वे सत्ता को हाथ से जाने देना नहीं चाहते थे। विरोधियों ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया। डूबती हुई बौद्ध सत्ता के उन्मूलक बनकर उन्होंने भारत में प्रवेश किया। भारतीय बौद्धों ने सत्ता के लोभ में अपने पराये का विवेक खोकर उनका सत्कार किया। उनके साथ सब प्रकार का सहयोग किया।

इस दावानल ने हिन्दू धर्म के अन्दर-बाहर चारों ओर उगने वाले झाड़-झंखाड़ को भस्म-सात् कर दिया। इस अग्नि में तपकर हिन्दू-धर्म पहले से अधिक तेजस्वी बनकर कुन्दन के रूप में निखर आया। धर्म की रक्षा हुई। देश की रक्षा हुई। स्वामी शंकराचार्य ने बुद्ध को हिन्दू धर्म के अवतारों में स्थान देकर बौद्धों की केन्द्रापसामी दृष्टि फेर दी। फिर घर-घर में देश-धर्म का गुंजन प्रारंभ हो गया।

शंकराचार्य ने इतना ही नहीं तो समस्त हिन्दू राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने एवं उसे संगठित करने का प्रयास किया। देश के चारों कोनों पर चार धामों के प्रति श्रद्धा केन्द्रित करते हुए उन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष की, मातृ भू की मूर्ति जन-जन के हृदय पर अंकित कर दी। पंचायतन का पूजन प्रारम्भ कर विभिन्न सम्प्रदायों को एक-दूसरे के आराध्यदेवों के प्रति केवल सहिष्णुता का भाव ही नहीं तो सभी देवताओं के प्रति अपने इष्टदेव के माध्यम से वही श्रद्धा एवं आदर का भाव व्यक्त करने को प्रेरित किया, इसके अनुसार प्रत्येक पाँचों देवताओं विष्णु शुक्र, शक्ति, गणपति और सूर्य की पूजा करता है। अपनी श्रद्धा के अनुसार अपने इष्टदेव को बीच में तथा चारों ओर अन्य चार देवताओं को रख कर पूजन करने की उसे छूट है। चार धामों के समान ही उन्होंने समाज को धर्म मार्ग पर नियंत्रित एवं अनुशासित रखने के लिए चार शंकराचार्यों की अध्यक्षता में भारत के चारों कोनों में चार मठ स्थापित किए।

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जैसे महापुरुषों के कारण ही हमारा नाम 'अमृतस्य पुत्रः' सार्थक हुआ है।

वैशाख शुक्ल दशमी को आर्यम्बा की कोख से जिस पुत्र-रत्न का जन्म हुआ उसे भगवान शंकर का वरदान जानकर शिवगुरु ने उसका नाम शंकर रखा। भगवान् शंकर की तपश्चर्या करके भगीरथ एक दिन भारत में गंगा को लाया, जिसने, भगीरथ के समस्त पूर्वजों का उद्धार किया तथा जो आज तक भारत के लिए सुख-सम्पत्ति की खान बनी हुई है। उसी भांति शिवगुरु की तपश्चर्या से से जो गंगा उद्भूत हुई उसने इस धर्म का उद्धार करके हमारी संस्कृति, सभ्यता, तथा राष्ट्रीयता को सम्पन्न किया।

शंकर को देखकर पास पड़ोस के सब लोग तथा बन्धु-बांधव बड़े ही प्रसन्न होते थे। वैसे तो छोटे बच्चे सबको ही प्यारे होते हैं परन्तु शंकर तो लोगों को इतना प्यारा था लगता था कि उनकी संदा यही इच्छा बनी रहती थी कि उसे अपनी छाती से ही लगाए रखें। हर एक का मन उसको खिलाने को चाहता था। जब लोग शंकर को प्रेम भरी दृष्टि से देखते तथा लपक कर गोदी में उठाते तो आर्यम्बा का दिल बासों उछल जाता। वह अपने को संसार में सब से सुखी समझती।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात', इस कहावत के अनुसार बालक शंकर को देखकर लोग कल्पना करने लगे कि वह भविष्य में अवश्य ही महापुरुष होगा। उसकी प्रतिभा धीरे-धीरे प्रकट होने लगी।

शंकर की इस प्रकार असाधारण बुद्धि देखकर शिवगुरु ने तीन वर्ष के होते न होते उसकी पट्टी पुजवा दी। बालक शंकर ने अक्षराभ्यास प्रारम्भ कर दिया। गुरु को उस समय बड़ा ही आश्चर्य हुआ जबकि शंकर ने एक बार बताने पर ही अपना पाठ याद कर लिया।

पाँच वर्ष की आयु तक शंकर ने समस्त लौकिक साहित्य पढ़ लिया तथा आगे वेद पढ़ने के लिए तैयार हो गया। उसकी अद्वितीय योग्यता देखकर उसका गुरु अत्यंत प्रसन्न था।

शंकर का गुरु होने के कारण वह अपने आपको धन्य समझता था। सच है, योग्य व्यक्ति अपना ही यश नहीं बढ़ाता परन्तु अपने सम्बन्ध में आने वाले सबकी यशवृद्धि का कारण बनता है और इसलिए सब लोग उससे किसी न किसी प्रकार का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करने का अथवा कहीं भी लोगों को जताने का प्रयत्न करते हैं।

शंकर केवल विद्या और बुद्धि में ही नहीं बड़ा चढ़ा था परन्तु उसका स्वभाव इतना मीठा था कि जो कोई उससे एक बार मिलता वह उसी का बन जाता था।

पाँच वर्ष की आयु में शंकर का उपनयन संस्कार हुआ। तथा बालक शंकर वेदाध्ययन के निमित्त गुरुकुल गया।

जितनी तीव्रता के साथ शंकर ने लौकिक विद्या प्राप्त की थी उतनी शीघ्र ही उसने वेद तथा वेदांतों का अध्ययन किया। अब शंकर केवल पढ़ता ही नहीं था परन्तु अपने साथ के विद्यार्थियों को पढ़ाता भी था। इस समय उसने बालबोधसंग्रह नाम का एक ग्रन्थ भी रच डाला जोकि उस छोटी आयु में भी उसमें कितनी बुद्धि की विलक्षणता थी इसके साक्षी स्वरूप संसार के सम्मुख आज भी उपस्थित है।

वेद-मन्त्रों का अर्थ उसके सामने आप ही आप स्फुरित होता जाता था मानो माता-पिता के दूध के साथ ही वह समस्त विद्या भी पी चुका हो, शास्त्रार्थ में जिस खूबी के साथ वह अपने प्रतिपक्षी का विश्वास संपादन करके अपने मत का मण्डन करता था उसको देखकर उसके गुरु-वर्ग को विश्वास हो गया कि शंकर अवश्य ही वैदिक धर्म का प्रचार भारतवर्ष में कर सकेगा तथा प्रत्येक स्थान पर शास्त्रार्थ में अजेय रहेगा।

गुरुकुलों में शिक्षा-पद्धति आज से भिन्न

थी। जब राष्ट्र स्वतंत्र होता है तब शिक्षा उसके वास्तविक उद्देश्यों के अनुसार बालक की मूल शक्तियों का विकास करके समाज का चैतन्यपूर्ण घटक तथा योग्य नागरिक बनने के लिए ही दी जाती है। उस शिक्षा में समाज से सम्बन्ध विच्छेद नहीं होता अपितु पग-पग पर समाज का हमारे ऊपर कितना ऋण है, उसके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, यह याद दिलाई जाती है।

अपने मस्तिष्क को विदेशियों के हाथ बन्धक रखने के कारण जिनकी विचार-शक्ति का दीवाला निकल गया है, स्वार्थी तथा आदर्शहीन जीवन ने जिनके हृदय के रस को शुष्क कर दिया है, जिनकी भावनाओं को काठ मार गया है तथा वेदना कुंठित हो गई है, आलस्य का साम्राज्य देखकर जहां से पुरुषार्थ, उद्योग और कर्मन्यता कूच कर गए हैं, ऐसे विचार-शून्य, भावनाहीन, कर्म-रहित विद्यार्थी उस समय नहीं होते थे।

आठ वर्ष की अवस्था तक शंकर गुरुकुल में रहा। समस्त वेदशास्त्रों में पूर्ण पारंगत होने के कारण उसको आचार्य की उपाधि दी गई तथा शिवगुरु का शंकर शंकराचार्य हो गया। परन्तु शिवगुरु को यह सुख कहां बदा था। "मेरे मन कछु और है बिधना के कछु और।"

शंकराचार्य के गुरुकुल से लौटने के पहले ही शिवगुरु इस संसार को छोड़ चुका था।

अपने पिता का दाह-कर्म तथा अन्य नैमित्तिक कर्म करते समय शरीर की अनित्यता का वे सतत चिंतन करते थे। वे सोचते कि यदि मनुष्य को एक दिन मरना ही है तो फिर वह कीड़े-मकोड़ों की भाँति क्षुद्र, स्वार्थ से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करके क्यों मरे।

अपनी माता के प्रेम और पिता का वार्षिक श्राद्ध करने की दृष्टि से वे वर्ष भर घर पर ही रहे। इसी बीच माता के विचारों को अपने अनुकूल बनाने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। वैसे तो आर्याम्बा स्वयं विदुषी थी, अपने देश और धर्म से प्रेम करती थी तथा चाहती थी कि शंकर के हाथों वैदिक धर्म का उद्धार हो परन्तु उनको यह पसन्द नहीं था कि शंकर घरबार छोड़कर कार्य करे, वे तो चाहती थी कि शंकर विवाह करे, घर गृहस्थी चलावे तथा उसके साथ-साथ जितना हो सके उतना वैदिक धर्म का उत्थान भी करने का प्रयत्न करे। इसमें उनका कुछ दोष भी नहीं है क्योंकि एक तो माता-पिता का पुत्र के प्रति स्वाभाविक प्रेम होता ही है, उनका अपार माता आर्याम्बा कैसे हो सकती थी। दूसरे उस समय के हिन्दू संन्यास लेकर देश का कार्य करने के पुराने आदर्श को न केवल भूल ही गए थे अपितु उसको बुरा भी समझते थे, क्योंकि बौद्धों ने अपने धर्म में संन्यास को प्रमुख स्थान दे रखा था। अतः साधारणतया अप्रचलित संन्यास धर्म का आश्रय शंकर ले, वह वे नहीं चाहती थीं।

आर्याम्बा ने भी निश्चय कर लिया कि अब शंकराचार्य का शीघ्र से शीघ्र विवाह कर देना चाहिए, उनके संन्यास को रोकने का उन्हें यही एक उपाय दीखा। उधर शंकराचार्य के मन में संन्यास की इच्छा दिनों दिन प्रबल होती जाती थी, केवल माता की अनुमति भर प्राप्त कर लेना चाहते थे। एक दिन शंकराचार्य अपनी माता के साथ नदी स्नान को जा रहे थे। उन्होंने कहा, "माँ! तुम्हारी सदा ही इच्छा रही है कि मैं वैदिक धर्म का उद्धार करूँ, आज आज्ञा दो कि मैं संन्यास लेकर अपने जीवन के कार्य को प्रारम्भ करूँ।"

आर्याम्बा को एक धक्का लगा परन्तु उसने अपने को सम्भालते हुए कहा, "बेटा! बेटा!! यह तुम क्या कहते हो? क्या अपनी बूढ़ी माँ को छोड़कर जाओगे, क्या कुछ पितृ-ऋण नहीं है?"

"है माँ! पितृ-ऋण है और उसी को चुकाने के लिए तो मैं संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ। पिताजी ने जिस धर्म को जीवन भर निबाहा, वह धर्म यदि नष्ट हो गया तो बताओ माँ, क्या उन्हें दुःख नहीं होगा।

"यह विद्वत्ता की बात मैं क्या जानूं शंकर! पर बता मेरा संस्कार कौन करेगा? सब पितरों को पानी कौन देगा?" आर्याम्बा ने कहा।

"मैं करूँगा संस्कार माँ, मैं करूँगा और मैं दूँगा अपने पितरों को पानी।"

"और तेरे बाद?"

"मेरे बाद सब हिन्दू समाज है, वह तेरा नाम लेगा, तेरा पुत्र कहलाएगा, यही है अपनी माता। यदि हिन्दू समाज नष्ट हो गया, तो फिर तू ही बता माँ, कोई दो हाथ, दो रोनेवाला तेरे वंश में हुआ तो क्या तुझे वह पानी देगा? कभी तेरा नाम लेगा?"

माता आर्याम्बा चुप थी। तर्क और भावना कभी साथ-साथ नहीं चलते, मनुष्य भावनाओं के समूहों के पीछे चलता है।

आर्याम्बा की बुद्धि ने शंकराचार्य की बात मान्य की किन्तु उनका हृदय कहता था कि सब व्यर्थ है। पुत्र का मोह बड़ी चीज है, शंकराचार्य यह सब जानते थे और इसलिए वे अन्य उपाय काम में लाये।

माता और पुत्र इस प्रकार बातचीत करते-करते नदी पर पहुँच गए। शंकराचार्य नदी में स्नान करने को उतरे। थोड़ी देर में वे एकदम चीख मारकर चिल्ला उठे—"मरी मैया री! मगर ने मेरा पांव पकड़ लिया। अब तो मैं गया। तुम्हारे लिए तो मैं मर चुका। माँ, अब यदि तुम मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दे दो तो शायद भगवान् मुझे देश और जाति के लिए... जल्दी बोलो!"

आर्याम्बा के सामने दूसरा और कोई मार्ग ही नहीं था। पुत्र के मरने से तो अच्छा है कि वह संन्यासी बनकर ही जीवित रहे। उसने शंकराचार्य को आपत्-संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा दे दी। परन्तु प्रतिज्ञा करवा ली कि उनके मरते समय वे उनके पास आ जायेंगे। ग्राह ने पैर छोड़ दिया और शंकराचार्य नदी से संन्यासी बन कर निकले।

यह कथा कहाँ तक सत्य है कहना कठिन है। ग्राह का पांव पकड़ने पर भी शंकराचार्य को न दबना तथा संन्यास की आज्ञा मिलते ही पांव छोड़ देना आश्चर्य की ही बात है "पर" एक महान् ध्येय की पूर्ति के लिए शंकराचार्य जैसे राष्ट्रनिर्माता तथा दार्शनिक का यह नाटक खेलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कुछ भी हो पारिवारिक स्नेह की नदि में व्यक्तिगत स्वार्थ का जो ग्राह शंकराचार्य को डसना ही चाहता था उससे वे अवश्य ही मुक्त हो गए तथा इस घटना से, चाहे सत्य हो या असत्य, हिन्दू समाज का इतिहास ही बदल

दिया।

संन्यास ग्रहण करके अपनी माता को प्रणाम करके गुरु की खोज में शंकराचार्य निकले। अन्तःकरण की पवित्रता ही उनका एकमात्र धन था। आत्मविश्वास की प्रबलता ही उनकी महती शक्ति थी। प्रखर बुद्धि ही उनका पथ प्रदर्शन कर रही थी। हृदय में अपने कार्य पर अडोल श्रद्धा तथा भगवान् का एक मात्र सहारा ही उनका बल था। वे बड़ी शांति का तथा अपने अन्दर एक प्रकार की चैतन्यमय शक्ति का अनुभव कर रहे थे, यही उन्हें स्फूर्ति प्रदान कर रही थी। उन्हें जान पड़ा मानो स्वयं भगवान् अच्युत उनकी अन्तर्आत्मा में प्रकट हो गये हैं। उसी समय उन्होंने अच्युताष्टक नाम की भक्ति-भाव से परिपूर्ण कविता की रचना की तथा अपनी आत्मा की प्रेरणा के अनुसार भगवत् गोविन्दपाद के आश्रम की ओर उनसे विधिवत् संन्यास ग्रहण करने के लिये चल दिये।

भगवत् गोविन्दपाद ने शंकर को विधिवत् संन्यास-धर्म की दीक्षा दी। कर्म-संन्यास ग्रहण करके शंकर उनके आश्रम में रहने लगा। शंकर जैसे प्रखर बुद्धि के शिष्य को पढ़ाना अत्यन्त दुष्कर कार्य था। परन्तु गोविन्दपाद ने समस्त शास्त्र बड़ी योग्यता से पढ़ाये। उनको विश्वास था कि शंकर धर्म का उद्धार करेगा, इसलिये बड़ी सावधानी-पूर्वक वेदान्त-धर्म के अंग-प्रत्यंग की शिक्षा दी। अपनी बातचीत से, उठने बैठने से तथा अपने व्यवहार से शंकर के ऊपर ऐसे संस्कार किये जो उसको धर्म-प्रचार के कार्य में योग्य बना दें। जब उसको पढ़ाते तो सूत्रों का अर्थ वे इतनी तन्मयता से करते कि मालूम होता था कि वे अपनी आत्मा शंकर के सामने निकाल कर रख देना चाहते हों। पक्षपात के आरोप को सहन करके भी उन्होंने शंकर को विशेष रूप शिक्षा दी क्योंकि वह उनकी तथा राष्ट्र की भावी आशा का केन्द्र था।

संन्यासी का धर्म क्या है व कम से कम उन्होंने उसको क्या समझा, यह वैसे तो उनके सम्पूर्ण जीवन से ही पता लगता है, किन्तु अमरकान्त के जीवन की एक घटना से उस पर बहुत प्रकाश पड़ता है। भगवत् गोविन्दपाद उस समय बद्रिकाश्रम को गये हुए थे आश्रम की देखभाल उस समय शंकराचार्य ही कर रहे थे। वर्षा ऋतु थी।

जैसे धीरे-धीरे दिये हुए ज्ञान के समान धीरे होने वाली वर्षा से पृथ्वी की प्यास बुझती है, उसकी उत्पादक शक्ति बढ़ती है, कृषि की वृद्धि होती है और जनता को आनन्द होता है। परन्तु ग्रहण करने वाले की ग्रहण शक्ति का अनुमान लगाये बिना दिया हुआ दान जैसे दुःख का कारण होता है, वैसे ही आसपास की भूमि उस अथाह जलराशि को ग्रहण न कर पाई। उसने उठाकर नर्मदा में फेंक दिया। वह भी औंधे नर की भांति उबल पड़ी, कुलाचें मारकर भागना शुरू किया मालूम होता था कि तीरवासियों का सर्वनाश ही कुलाचें मार रहा हो।

नर्मदा में बाढ़ आ गई और आस पास के गांव बह गये। हजारों ही मनुष्य बे परवार हो गये। वर्षों में दी हुई सम्पत्ति को नर्मदा एक आवेश में लूट कर ले गई।

समस्त संसार को माया समझने वाले शंकर ने न जाने कितने दिन इन बाढ़ पीड़ितों की सेवा में बिताये। आश्रमवासी कहते हमको इस सबसे क्या प्रयोजन? हमको तो परम सत्य का अनुसन्धान करने में और परब्रह्म का साक्षात्कार करने में अपना समय बिताना चाहिये। परन्तु शंकर जानते थे कि परम सत्य क्या है। आकाश में कुसुम चाहे खिल जाये परन्तु वहां भगवान के दर्शन नहीं हो सकते। उसके लिये तो नीचे पृथ्वी पर ही अपने आस पास अपने देशवासियों के हृदयों को ही टटोलना पड़ेगा। आर्त की पुकार में जिसको भगवान की वाणी नहीं सुनाई देती, उसके कान भगवान के शान्त स्वर को नहीं सुन सकते। दुर्बल और दुःखी की आत्मा को जो नहीं पहिचान सकता वह सर्वात्मा का क्या दर्शन कर सकेगा?

गोविन्दगुरु जब लौटकर आये तो शंकर के इस सौहार्द के समाचार को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि शंकर ने सर्वात्मैक्य की अवस्था प्राप्त कर ली है अतः अब उसको धर्मकार्यार्थ देश-भ्रमण की आज्ञा दे देनी चाहिए। परन्तु शंकर के इस महान कार्य के निमित्त निकलने के पूर्व गोविन्दपाद ने उसे अपने गुरु गौड़पाद के दर्शनकरा देना उचित समझा। मन का यह विचार दूसरे ही क्षण शंकर को कह सुनाया। गोविन्दगुरु और शंकर बद्रिकाश्रम की यात्रा को चल दिये।

बद्रिकाश्रम में भगवान गौड़पादाचार्य ब्रह्मनिष्ठा में लीन थे। गोविन्दपाद ने शंकराचार्य का परिचय कराया। शंकर ने अपने परमगुरु को साष्टांग प्रणाम किया। गोविन्द गुरु की भांति गौड़पादाचार्य को भी शंकर को देखकर विश्वास हो गया कि यह अवश्य ही वैदिक धर्म का उद्धार करेगा।

इतना होते हुए भी वे शंकर को कच्चा नहीं निकलने देना चाहते थे, क्योंकि वे जानते थे कि जहां एक अच्छा कार्यकर्ता समाज को अवनति के गर्त से निकाल कर हिमाद्रि के उत्तुङ्ग शिखर पर आसीन कर सकता है, वहां एक अयोग्य कार्यकर्ता समाज के मार्ग में रोड़े ही अटकायेगा तथा किसी न किसी दिन अपने व्यक्तिगत स्वार्थ, नाम और यश के पीछे धर्म का घात करने को तैयार हो जायेगा। अहंकार वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति को अवनति के गहरे गर्त में डालता है किन्तु समाज के कार्यकर्ता का अहंकार तो उसके साथ-साथ सम्पूर्ण समाज में फैलकर चारों ओर के वातावरण को विषाक्त कर देता है। वे जानते थे कि शंकर दुर्गुणों आदि से कोसों दूर है परन्तु फिर भी उन्होंने उसे अपने पास और चार वर्ष रखा, स्वयं उसको शिक्षा दी तथा दोषों को बीन-बीन कर निकाल फेंका।

वहां रह कर शंकराचार्य ने अपने परमगुरु की आज्ञा से तथा उन्हीं के तत्त्वावधान में अनेक ग्रन्थों की रचना भी की।

माता का देहान्त

अचानक शिष्य-भाई अग्निशर्मा आश्रम में आए और अग्निशर्मा ने बहुत सा धन निकालकर शंकराचार्य के सम्मुख रख दिया और बोला, "यह धन है जो माता आर्यम्बा ने तुम्हारे पास भेजा है। वे अपनी अन्तिम सांसे गिन रही है।"

शंकराचार्य के ऊपर मानों वज्र गिर

सका। वे हतप्रभ से खड़े थे। माता से उनको बहुत प्रेम था। उन्हें इस बात का दुःख नहीं था कि वह परलोकगामि होना चाहती थी परन्तु इस बात का कि वे अपनी धर्मयात्रा अभी प्रारंभ नहीं कर सकेंगे। शान्त चित्त से उन्होंने अपने आपको भगवान् को अर्पित कर दिया। संन्यास लेते समय उन्होंने माता से प्रतिज्ञा की थी कि मरते समय अवश्य आऊंगा अतः अपनी प्रतिज्ञानुसार अब उनको कालटी जाना था। दौड़ते-दौड़ते जैसे तैसे वे कालटी पहुँचे। भगवान की कृपा से माता के अन्तिम दर्शन कर सके।

एक दिन आर्यम्बा ने शंकराचार्य से कहा, "शंकर! तू धर्म का ज्ञाता है। देश भर में धर्म-प्रचार करने वाला है। तनिक मुझे भी तो कुछ धर्म बता। मरते-मरते तो कुछ शान्ति मिले।"

शंकराचार्य ने माता की आज्ञा पाकर उसे अद्वैत की बातें अत्यन्त ही सीधी और सरल भाषा में बताने का प्रयत्न किया। उसे समझाने के लिये उन्होंने तत्त्वबोध नाम का एक सरल ग्रन्थ भी रचा। सब कुछ सुनकर माता आर्यम्बा ने कहा, "ये तो ऊंची बातें हैं शंकर! देश के सब लोग इन बातों को कहां समझ सकेंगे? मुझे तो कुछ भगवान कृष्ण के विषय में ही बता।"

शंकराचार्य ने कृष्णाष्टक बनाकर माता को सुनाया तथा उसी दिन यह भी समझा कि जबतक वेदान्त के तत्त्वज्ञान को भक्ति का पुट नहीं मिलता तब तक वह जन-साधारण के किसी भी काम का नहीं है और इसी समय भक्तों के भिन्न इष्टदेवों के पीछे एक परब्रह्म की प्रतिष्ठापना का निश्चय कर लिया।

वे संन्यासी थे और संन्यासी को दाहकर्म करने की आज्ञा नहीं है, यह वे जानते थे। यह समस्या उनके समक्ष भी उपस्थित हुई थी जब माता आर्यम्बा ने उनसे उसका अन्तिम संस्कार कराने की प्रतिज्ञा कर डाली थी।

परन्तु शंकराचार्य ने संन्यास धर्म को इसलिये अपनाया था कि इस मार्ग से देश, जाति और धर्म का अधिक से अधिक कार्य कर सकेंगे। कहते हैं कि भगवत् गौड़पादाचार्यशंकर के भाष्यों को देखकर इतने प्रसन्न हुए कि वे उसे अपने गुरु एवं परमगुरु शुक और महर्षि बादरायण के दर्शन कराने के लिए कैलाश पर्वत पर ले गये। वेदान्त के आदिप्रणेता के दर्शन करके शंकर ने अपने आपको धन्य समझा और उसी समय धन्याष्टक की रचना की।

माता के भेजे हुए धन का शंकराचार्य क्या करते? वे तो सन्यासी हो चुके थे। अतः उन्होंने बद्रिकाश्रम में ही उस धन से श्री बद्रीनाथ का मन्दिर बनवाया। १३००० फीट की ऊंचाई पर हिमालय की उपत्यका में आज भी यह भव्य मन्दिर खड़ा हुआ है और इसके साथ ही वह विशाल हिन्दू-राष्ट्र भी खड़ा हुआ है जिसकी नींव शंकर ने इस मन्दिर की नींव के साथ ही रखी थी।

अपने कार्य को समाप्त करके शंकराचार्य ने देश-भ्रमणार्थ गुरु से आज्ञा प्राप्त की। गुरुवर्य ने उसको आशीर्वाद दिया तथा उसकी सफलता के लिये शुभ कामनायें प्रदर्शित की। भगवान् का आशीर्वाद तथा पूर्वजों का पुण्य उसके साथ था। गुरु से आशीर्वाद पाकर उसने उनके सम्मुख सिर नवाया, उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और कमण्डलु लेकरअपनी धर्म-यात्रा प्रारंभ कर दी।

शंकराचार्य ने गुरु से आज्ञा लेकर यात्रा की तैयारी की ही थी कि उन्होंने अपने संबंधी अग्निशर्मा को आते देखा। अनिष्ट की आशंका से उनका हृदय धड़कने लगा।

माता का अन्तिम संस्कार समाप्त ही कर पाये थे कि शंकराचार्य को सदानन्द ने भगवत् गोविन्दपाद के रुग्ण-शय्या पर पड़े होने का समाचार दिया। समाचार सुनते ही वे अमरकान्त की ओर दौड़ पड़े।

बस ॐ का उच्चारण करते-करते वे महा प्रयाण कर गये। उनके स्थान पर शंकराचार्य ही अब शिष्य समूह के गुरु थे।

शंकराचार्य ने इतने दिनों में राष्ट्रकी सम्पूर्ण परिस्थिति का पूर्ण अध्ययन कर लिया था।

प्रथम तो अवैदिक तथा पुरानी परम्परा को नष्ट करने वाले बौद्ध आदि धर्म और दूसरे उपर्युक्त धर्मों के कारण प्रतिक्रिया-स्वरूप अथवा वैदिक धर्म की रक्षार्थ उत्पन्न धर्म।

अतः उन्होंने निश्चय किया कि प्रथम तो द्वितीय श्रेणीवालों को जिनमें कि इस राष्ट्र के कल्याण की भावना है, जो ऋषि-मुनि-प्रणीत वैदिक धर्म के पुनरुद्धार की कामना करते हैं, उनको एक मार्ग पर लाया जाये, उनको संगठित करके उनमें एकसूत्रता निर्माण की जाये और इसके बाद आज भ्रम से जो अपनी प्राचीन परम्परा से टूट कर दूर जा गिरने के कारण अराष्ट्रीय वृत्तियों के शिकार बन गये है उनकी अराष्ट्रीय वृत्ति दूर करके उनको अपने में मिलाया जाय।

शंकराचार्य ने निश्चित किया कि सम्पूर्ण भारत वर्ष में आन्दोलन करने के पूर्व उनके आंदोलन में उनका साथ देने वाले साथी तैयार करने होंगे। इसके लिये श्री काशी-क्षेत्र से अधिक उपयुक्त और कौन-सा स्थान हो सकता था?

शंकराचार्य ने उक्त निश्चय के अनुसार भगवद् गोविन्दपाद के शिष्यों के साथ वाराणसी में डेरा डाल दिया।

शंकराचार्य कुछ काल काशी में रहे। वहां उनका प्रत्येक क्षण ध्येय-पूर्ति के क्षेत्र तैयार करने में व्यतीत होता था। अपने चारों ओर उन्होंने ऐसे दृढ़ निश्चयी लोगों को एकत्रित करना शुरू किया जो उन्हीं की तरह विचार रखते थे तथा उनके समान ही जिन्होंने उन विचारों को सत्य सृष्टि में परिणत करने का व्रत ले लिया था। उनका शिष्य-मण्डल धीरे-धीरे बढ़ता गया। इनमें पद्मपाद, गुरु के बुलाने पर गंगा जी में नंगे पैरों कूद पड़ा। अथाह जल-राशि में पग-पग पर उसको प्रस्फुटित पद्मम पुष्प मिलते गये जिनपर पांव रखता हुआ वह सानन्द पार आ गया। इस-उसका नाम पद्मपाद रखा गया।

अकेला पद्मपाद ही क्या, ऐसे अनेक शिष्य थे जो उनको प्राणपण से चाहते थे तथा उनके इंगित पर जीवन को अर्पण करने में अपने जीवन का अहोभाग्य समझते। वेदान्त जैसे शुष्क विषय का प्रतिदान करने वाले आचार्य शंकर में कितनी आत्मीयता थी यह तो उनका शिष्य मण्डल ही जानता था। गुरु का रोब दाब उन्होंने कभी नहीं दिखाया बल्कि अवसर पड़ने पर तो उन्होंने अपने शिष्यों की सेवा शुश्रूषा भी की। उदंक की तो उन्होंने कुष्ठ

रोग में सेवा की थी तथा अपनी सेवा परायणता से ही उसको इस भीषण रोग से छुटकारा दिलाया। हस्तामलक उनकी आत्मीयता के कारण ही विशुद्ध अवस्था को तज कर भली-चंगी अवस्था को प्राप्त हुआ। उनका अपने शिष्य के साथ गुरु और शिष्य का संबन्ध न होकर सहयोगियों का सा संबन्ध था। सब के सब एक ही मार्ग के तो पथिक थे। इसी प्रेम एवं हृदय की विशालता के कारण उनके चारों ओर अत्यन्त श्रद्धावान तथा उनके जीवन से—उनके ध्येय से समरस लोगों का का समूह एकत्रित हो गया। इसी के बल पर वे भविष्य में अपना धर्म-प्रचार का कार्य अत्यन्त सरलता से कर पाये।

ज्ञानियों में श्रेष्ठ, सर्व वेदवेदाङ्ग के उदभट विद्वान शंकराचार्य ने लोगों को अपने ज्ञान से नहीं बल्कि प्रेम से जीता; लोगों के मस्तिष्क पर नहीं हृदय पर विजय पाई। हृदय जीतने पर मस्तिष्क तो अपने आप वश में हो जाता है क्योंकि मस्तिष्क हृदय का दास है।

शंकराचार्य के मन में कभी छोटे-बड़े, छूत-अछूत का विचार नहीं आया। सच में तो छूत-अछूत की समस्या भी आज की ही है, उस समय उसका अस्तित्व भी नहीं था। फिर भी एक घटना का वर्णन करना आवश्यक है। एक बार शंकराचार्य स्नान करने के लिये जा रहे थे कि एक चाण्डाल सामने से आया। उनके शिष्यों ने उसको दूर हटने को कहा। चाण्डाल एकदम मुड़ा तथा शंकराचार्य से बोला, 'सर्वात्मैक्य तथा अद्वैत की बातें करना तथा व्यवहार में भेद-भाव दिखलाना यह कौन सी रीति है आचार्य ? यह आडम्बर कैसा ? क्या मैं यही समझूं कि आपका संन्यास, दण्ड और कमण्डलु सब ढोंग है ? और फिर आप किसको दूर हटने को कह रहे हैं ? शरीर को ? वह तो नश्वर है। मेरे और आपके शरीर में क्या अन्तर है ? एक से अवयव हैं, अन्तर्बाह्य रचना एक सी ही है। इस पर भी शरीर सत्य नहीं है माया है। उसके धोखे में पड़कर अभेद का नाम लेकर भेद की सृष्टि कर रहे हैं ?

शंकराचार्य सब शान्त भाव से सुनते रहे। उनको अपने शिष्य की भूल पर बड़ा पश्चाताप हुआ। उसी समय उन्होंने मनीषपंचक नाम से विख्यात पांच श्लोकों की रचना की। उस चाण्डाल को अपना गुरु कहा।

छोटे से छोटे को भी वे अपनाने को तैयार रहते थे, उससे सीख लेते थे और उसे आदर देते थे। इसलिए तो कहा है, "विद्या ददाति विनयम्।"

शंकराचार्य का कार्य गति पकड़ता जाता था। काशी में अब वे चोटी के पंडितों में गिने जाने लग गये।

अतः एक दिन उन्होंने अपना दिग्विजय का विचार प्रकट कर दिया। सम्पूर्ण शिष्यमण्डली आनन्दातिरेक से नाचने लगी। परन्तु शंकराचार्य की मुद्रा शान्त एवं ध्यानमग्न थी।

स्वामी शंकराचार्य ने अपनी दिग्विजय के निमित्त कूंच कर दिया। काशीराज रतन सिंह उनके साथ थे। न्याय और सत्य के पीछे शक्ति रहना आवश्यक है। वे जानते थे कि बिना सत्य के शक्ति अंधी होती है तो बिना शक्ति के सत्य भी पंगु है।

गंगा के किनारे-किनारे उत्तर की ओर यह तरुण तपस्वियों का दल मार्ग में ग्राम-ग्राम में लोग उनके दर्शन को आते। आचार्य का उपदेशामृत पान करके तृप्त हो जाते। शैव उनको साक्षात शंकर का अवतार मानते तो वैष्णव उनमें विष्णु की छटा देखते। सभी देवी देवता परब्रह्म भिन्न-भिन्न स्वरूप है यही वे लोगों को बताते थे।

किस प्रकार शक और हूणों की बर्बरता से मुक्त करने के लिए हिन्दू धर्म की प्रेरणा मिली तथा उस युग के राष्ट्रीय वीरों ने सब धर्मों को छोड़कर 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' के सिद्धान्त को मानो भुलाकर हिंदू धर्म का उत्थान अपना राष्ट्रीय कर्तव्य समझा, यह सब उनको बताते।

काशी से चलकर वे चरिणाद्रिगढ़ में आये जहां कि विंध्याचल गंगा में अवगाहन करने के लिए उतरता है तथा महर्षि अगस्त्य की आज्ञा के कारण नतमस्तक होकर उत्तर और दक्षिण के सम्मिलककर्ता के चरण चूमकर गंगा अपने को धन्य मानती है। महात्मा भर्तृहरि की स्मृति को, जिन्होंने भाई को राज्य देकर स्वयं लोक कल्याणार्थ संन्यास का जीवन व्यतीत किया, सादर शीश नवाकर शिष्य-मंडली प्रयाग पहुंची। प्रयाग ही पहला स्थान है जहां स्वामी शंकराचार्य काशी के बाद कुछ दिन रुके।

वह दिन धन्य है जिस दिन शंकराचार्य ने प्रयाग में प्रवेश किया। अब भी हम उस दिन मेला लगाते हैं। परन्तु हम में से कितने जानते है कि ऐसे ही एक मेले में शंकराचार्य भी आये थे और वहीं उन्होंने अपने मत का प्रतिपादन किया था। हमारे राष्ट्रीय जीवन में मेलों का स्थान अत्यन्त महत्व का है।

इन्हीं मेलों में आकर विद्वान लोग अपने अपने मतों का प्रतिपादन करते थे और वह मत सहज रूप में सम्पूर्ण भारत में फैल जाते थे। माघ मेला तो समाप्त हो गया किन्तु स्वामी शंकराचार्य वहां कुछ दिन और ठहरे। मेला वैसे ही लगा रहा, हाँ अब संगम के पास से उठकर वह भारद्वाज आश्रम पर आ गया था। इसी भारद्वाज आश्रम में एक बहुत बड़ा विश्वविद्यालय था तथा सहस्रों वहां शिक्षा ग्रहण करते थे।

उन्होंने वेदांत सूत्रों का अध्ययन प्रारंभ कर दिया। सूत्रों का भाष्य तथा उनका विशदीकरण सतत चलता रहता था। उनके बहुत से विरोधी भी उनसे तर्क करने के लिए आये और उनके शिष्य बनकर रह गए।

तर्क के लिए तर्क करने वालों से तो उन्होंने कभी बात नहीं की। हाँ जो मन में सच्ची शंकाएं लेकर आता था, जिसके मन में देश और धर्म का सच्चा प्रेम रहता था, उसकी शंकाओं का समाधान करते तथा उसके ऊपर अपनी योग्यता, मार्ग की सच्चाई तथा अपने हृदय की दृढ़ता और निःस्वार्थ की छाप लगाते देर नहीं लगती।

प्रयाग के निवासकाल में ही उनकी भारती यमुनाष्टक, प्रयागाष्टक, माधवाष्टक लक्ष्मी-नृसिंह पंचरत्न तथा वेदसार शिवस्तोत्र नामक कविताओं के रूप में प्रकट हुई।

प्रयाग में शंकराचार्य ने प्रभाकर नामक विद्वान पर बड़ी विजय प्राप्त की और बाद में प्रभाचार्य उनके शिष्य बन गए।

फिर आचार्य शंकर मगध पहुंचे और कुमारील के शिष्य मण्डन मिश्र को व्यवस्था कुशलता से जीतकर अपने मार्ग पर साथ ले चले। इससे शंकराचार्य की चर्चा चारों दिशाओं में फैल गई। मगर अचानक मण्डन मिश्र की पत्नी भारती ने उनको शास्त्रार्थ की चुनौती दी। और गृहस्थ आश्रम के सिद्धांत पर झुकने पर मजबूर कर दिया मगर छः माह बाद शंकराचार्य ने भारती को गृहस्थ जीवन की ऐसी वेदान्तिक व्याख्या दी कि उसने भी पति के साथ संन्यास ले लिया। स्वामी शंकराचार्य को अब एक उत्कृष्ट कार्य-कर्त्ता मिल चुका था। सहस्रों लोग उनके मत के अनुयायी हो गये थे। पर इतने से उनको संतोष कहां; वे लोग तो संपूर्ण भारत-वर्ष को एकात्मता का अनुभव कराना चाहते थे, सम्पूर्ण जन-समुदाय को अद्वैत का पाठ पढ़ाना चाहते थे। इस ध्येय की विशालता की तुलना में अभी उनका कार्य नगण्य ही था।

माहिष्मती से स्वामी शंकराचार्य दक्षिण की ओर चले। जिधर से वे निकल जाते लोग उनके हो जाते। अनेकानेक देवी देवताओं के पुजारी उनसे मिले। अपने-अपने देवताओं को ही वे सर्वस्व समझते थे। स्वामी शंकराचार्य ने किसी भी देवता का खण्डन नहीं किया। लोगों को श्रद्धा को नष्ट नहीं किया।

शाक्त, शैव, वैष्णव, गाणपत,आदित्योपासक आदि सब के सब एक ही शक्ति के उपासक हैं; उसी सहस्रानन' सहस्रबाहु, सहस्रपाद, सहस्राक्ष राष्ट्रपुरुष की भिन्न-भिन्न स्वरूप में पूजा करते हैं।

स्वामी शंकराचार्य के इस सदुपयोग के कारण लोगों को अपनी वस्तु न छोड़ते हुए भी बड़ी चीज मिल गई। जीवन की विशालता से, ध्येय की उच्चता, व्यवहार की महत्ता से उनका सम्बन्ध जुड़ गया।

दक्षिण का भ्रमण करते-करते स्वामी शंकराचार्य कांची पहुंचे। कांची को दक्षिण का काशी कहा गया है पल्लवों की राजधानी रहने का इसको सौभाग्य प्राप्त हो चुका था। सरस्वती के स्वर ने कांची को काशी बना रखा था तो लक्ष्मी के निवास ने उसे पाटलिपुत्र का वैभव प्रदान किया था।

समाज में जो एक विचार और एक व्यवहार की लहर आयी है वह सदैव बनी रहे तभी तो समाज का संगठन सुदृढ़ होगा, शाश्वत् होगा, नहीं तो पानी के बुलबुले की भांति क्षणिक होकर नष्ट हो जाएगा। अतः उन्होंने समाज को स्फूर्ति देने वाली, उसके जीवन-स्रोत-स्वरूप, प्रत्येक की श्रद्धा के केन्द्र 'मठ' स्थापना करने का विचार किया—मौजें मारने वाले महंत चाटुकार चेलों की मंडली नहीं अपितु समाज के सच्चे सेवक, देश के कणधार ज्ञानी, विद्वान्, निःस्वार्थी, निःस्पृही तथा दृढ़ निश्चयी कार्यकर्ताओं को शिक्षित करके सम्पूर्ण देश में भेजने वाले स्थान के रूप में उन्होंने मठ स्थापित किये। सुरेश्वराचार्य को उन्होंने शृङ्गेरी का सबसे पहला मठाधीश नियुक्त किया दक्षिण को ज्ञान की शिक्षा देने वाला, उनको धर्म का पाठ पढ़ानेवाला, उनको धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था देनेवाला उत्तर का मिथिला का ब्राह्मण सुरेश्वराचार्य हुआ। और उत्तर में जोशी मठ का आचार्य दक्षिण का ब्राह्मण नियुक्त किया गया।

दक्षिण का कार्य समाप्त करके स्वामी शंकराचार्य ने फिर अपना मुख मोड़ उत्तर की ओर मोड़ा।

मध्यार्जुन में भगवान शिव की पूजा-अर्चा करके आचार्य ने विदर्भ की ओर प्रस्थान किया। विदर्भराज नल के आख्यान अब भी स्थान-स्थान उनको सुनाने को मिलते थे। वहां भी अनेक उपासकों को उन्होंने परास्त किया। स्वामी शंकराचार्य ने लक्ष्मी का-वास्तविक उपयोग बताया कि लक्ष्मी के जीवन की धन्यता तो विष्णु की सेवा में है; शेष-शायी भगवान विष्णु के पैर दबाते रहना, यही तो उसके जीवन भर का कार्य है। अतः यदि धन का उपयोग धर्म के लिए नहीं हुआ, देश सेवा में नहीं, भगवत्-कार्य निमित्त नहीं हुआ तो धन कमाना व्यर्थ ही है। धन तो साधन है, साध्य नहीं।

अपने ज्ञान के आलोक से दिग्दिगन्त को आलोकित करते हुए मार्ग की बाधाओं को अपने पुरुषार्थ से पदाक्रान्त करते हुए जगन्नाथ धाम में पहुंचे।

जिस प्रकार शृंगेरी और कांची में दक्षिण के लिए मठ की स्थापना की थी उसी प्रकार जगन्नापुरी में भी पूर्व-प्रदेश के मार्ग-दर्शन के निमित्त गोवर्धन मठ की स्थापना की।

पुरी से काशी होते हुए वे पश्चिम की दिग्विजय के निमित्त गए। जो हाल पूर्व में वही पश्चिम में। सूर्य तो जहां जाता है: वही आलोक करता है। अपने एकत्व के सन्देश को सुनाते हुए वे द्वारिका पहुंचे। यहां भी स्वामी शंकराचार्य ने एक मठ की स्थापना की।

द्वारिकापुरी से आचार्य फिर उत्तर की ओर चल पड़े।

आचार्य की विजय कहानी चारों ओर फैल गई। राष्ट्रीयता की एक लहर उठी, उसमें लाखों ही बौद्धों ने अवगाहन किया, अपने मन के मैल को, संकुचित अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों को धो डाला। अब उनका हृदय स्नेह-पूर्ण तथा स्वच्छ था।

भारत की समन्वयात्मक संस्कृति की पुस्तक का एक नया परिच्छेद खुल गया। घर से रूठकर गये हुए बालक को आज स्वामी शंकराचार्य पुनः घर में ले आये। कितने हर्ष का होगा वह दिन!

तक्षशिला से आचार्य शंकर काश्मीर की ओर चले। शंकराचार्य काश्मीर में कुछ दिन रहे जिस स्थान पर रहे वह शंकराचार्य की पहाड़ी के नाम से अभी तक प्रसिद्ध है। किन्तु केवल एक पहाड़ी को ही शंकराचार्य पहाड़ी कहना भूल होगी—क्योंकि जिस-जिस जगह उनके चरण गये वह उनका है, भारत का है और वे चरण आसिन्धु-सिन्धु भारत के कण-कण का स्पर्श कर चुके थे।

सम्पूर्ण उत्तर और पश्चिम भारतीय संस्कृति की समन्वय-सुधा का पान कर चुका था। केवल सुदूरपूर्व का प्राग्ज्योतिष प्रान्त ही ऐसा रह गया था जहां अभी तक शंकर की शब्द-ध्वनि नहीं पहुंची थी।

जनता धीरे-धीरे शंकराचार्य के चारों ओर इकट्ठा होने लगी। स्वामी शंकराचार्य शुद्ध वेदान्ततत्व प्राग्ज्योतिष के ग्राम-ग्राम घर-घर की चर्चा का विषय बन गया; इतना ही नहीं जनता ने उसको आचरण में लाना भी प्रारंभ किया। कहते हैं कि एक दिन एक कापालिक के द्वारा उनके शिरच्छेद का प्रयत्न किया गया किंतु वह उनके शिष्यों की सतर्कता के कारण सफल न हो सका।

उन्हें अनुभव होने लगा कि अब उनके जीवन का ध्येय उन्होंने प्राप्त कर लिया। अतः हिमालय में जाकर चिंतन, मनन और तपस्या का विचार किया।

हिमालय उनको जीवन भर बुलाता रहा था, अब भावना भी इस प्रकार के मार्ग में कर्त्तव्य आड़े नहीं आती थी। अतः उन्होंने बद्रिकाश्रम की ओर प्रस्थान कर दिया।

आचार्य शंकर बद्रिकाश्रम में अधिक दिन नहीं रह पाये। वहाँ से उन्होंने केदारनाथ की यात्रा की। पाण्डवों की स्वर्ग यात्रा उनके सम्मुख थी। उन्हें भी भान होने लगा कि उसी मार्ग पर कोई उनको बुला रहा था। यह बुलाहट रोकी नहीं जा सकती थी। यम का हाथ किसने पकड़ा है? बस एक दिन आचार्य शंकर ध्यानमग्न हो समाधिस्थ हो गये। सब शिष्यगण देखते रह गये। वेदान्त का तत्व जानते हुए भी उनका हृदय आचार्य के शरीर के लिए छटपटाने लगा; उनकी आखें रोई किंतु हिमालय के शीत में गर्म आंसुओं की बूंदों को हिम बनते देर नहीं लगी।

आचार्य शंकर भारतवर्ष के अवतारी महापुरुषों में से एक हैं। हमारे राष्ट्र-जीवन की रचना में उनका बहुत बड़ा हाथ है। आत्मा की महनीयता, भावों की शांतता, मस्तिष्क की दृढ़ता तथा बुद्धि की तीक्ष्णता में वे अप्रतिम थे। उनके विचार वेदांत थे, उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनका तर्क सूक्ष्म तथा उनका तात्विक दृष्टिकोण सर्वग्राही था। अनेक में एक के अपने प्राचीन सिद्धान्त को आचार्य शंकर ने ही आत्मिक, भौतिक, नैतिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में अपने अद्वैत के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके व्यावहारिक जगत में लाया। यही सिद्धांत मानवमात्र की शान्ति और कल्याण का कारण होगा।

आचार्य शंकर के सिद्धांत और प्रयत्न के परिणाम-स्वरूप भारतवर्ष एक ओर तो रूढ़िवादी कर्मकांड और दूसरी ओर नास्तिकवादी जड़वाद के गर्त में गिरने से बच गया। आचार्य शंकर ने भारतवर्ष का उद्धार किया, हम भी अपने इस महान राष्ट्र-पुरुष के प्रति इससे अच्छी श्रद्धांजलि कौन-सी अर्पित कर सकते हैं कि उनके इस एकत्व के सिद्धांत को अपने जीवन में लाकर पुनरपि भारतवर्ष को उन्नत एवं वैभवशाली बनावें। बत्तीस वर्ष की आयु में इतना महान् कार्य करनेवाले आचार्य शंकर के अखण्ड कर्ममय जीवन से हमारे जीवन को भी कर्म की स्फूर्ति प्राप्त हो तथा अपने पुरुषार्थ, निश्चय निष्ठा और त्याग के बल पर अद्वैत के सत्य सिद्धांत के द्वार सम्पूर्ण संसार की सच्ची शान्ति व सुख देकर उन्हें जगद्गुरु के वास्तविक पद पर आसीन करावें। यही है उनका पुण्य स्मरण एवं उनकी सच्ची पूजा। □

छपते-छपते

दादरी कांड :

झगड़ा क्यों हुआ ?

गाजियाबाद, 10 मई (निस). कल दादरी रेलवे स्टेशन पर अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्रों के साथ हुई मार-पीट के सम्बन्ध में गाजियाबाद के जिला अधिकारियों ने बताया कि यात्रियों को डिब्बे में घुसने से रोकने तथा स्त्रियों के साथ अभद्र व्यवहार के कारण उक्त घटना घटी है।

दादरी थाने में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्रों के विरुद्ध तीन रपटें यात्रियों ने दर्ज करायी हैं। उनमें उक्त आरोप लगाए गए हैं। विश्वविद्यालय छात्रों ने एक रपट दर्ज करायी है जिसके सम्बन्ध में पुलिस ने चार व्यक्तियों को गिरफ्तार किया है।

ज्ञात हुआ है ए. जी. एन पैसेन्जर ट्रेन पर कल प्रातः ही विश्वविद्यालय के छात्रों ने अलीगढ़ में ही कब्जा कर लिया था। सभी डिब्बों पर अपने बैनर लगा दिए थे। गाड़ी को चलने से बार-बार रोका गया। साथ ही अन्य यात्रियों को भी चढ़ने से रोका गया। छात्र चाहते थे गाड़ी तब तक न चले जब तक सभी छात्र दिल्ली रैली में जाने के लिए न आ जाएं। बाद में पुलिस हस्तक्षेप से 5-50 बजे चलने वाली गाड़ी 6-30 मिनट पर चली।

रास्ते के अन्य स्टेशनों पर भी यात्रियों को चढ़ने से रोका गया लेकिन जिनके साथ स्त्रियां थीं उनको डिब्बे में आ जाने दिया। एक यात्री रिपोर्ट के अनुसार स्त्रियों के साथ छेड़खानी का सिलसिला दनकौर स्टेशन से शुरू हुआ।

दनकौर स्टेशन से प्रतिदिन गाजियाबाद की ओर पढ़ने तथा नौकरी करने वाले दैनिक यात्री जबरन डिब्बों में घुस गए। उन्हें नीचे उतारने के लिए ही किसी ने गाड़ी की जंजीर खींची। जमकर दोनों ओर से पथराव हुआ।

(नवभारत टाइम्स 11 मई 79)

★ हलचल ★

अ. भा. वि. प. उ० प्र० कार्यसमिति की बैठक :

4, 5 अप्रैल को हरिद्वार में सम्पन्न हुई। तीन प्रस्ताव पारित किए गए। पहला प्रस्ताव, शिक्षण संस्थाओं की अनावश्यक बन्दी, सत्रों की अनियमितता, परीक्षाफल प्रकाशन में देरी, लम्बे समय तक चलने वाली परीक्षाएं, गुंडागर्दी, अवांछनीय राजनैतिक हस्तक्षेप, राजनैतिक व प्रतिस्पर्धी अध्यापकीय एवं विद्यार्थी राजनीति, प्रशासनिक निष्क्रियता ने शैक्षिक वातावरण को दूषित किया है। कार्यसमिति शिक्षा मंदिरों में अनिश्चित घूमते हुए असामाजिक तत्वों के विरुद्ध अविलम्ब कार्यवाही की माँग राज्य सरकार से करती है। दूसरे प्रस्ताव द्वारा जम्मू कश्मीर में चल रहे आन्दोलन का समर्थन किया एवं जम्मू-कश्मीर सरकार द्वारा आन्दोलन के दमनात्मक तरीकों की निन्दा की है। तीसरे प्रस्ताव द्वारा हाई स्कूल व इन्टर बोर्ड की परीक्षाओं में हुई धाँधली एवं भ्रष्टाचार, खुले आम नकल की प्रवृति पर कार्यसमिति ने चिंता प्रकट करते हुए कहा कि इससे बोर्ड की विश्वसनीयता समाप्त हुई है। कार्यसमिति का यह स्पष्ट मत है कि जहाँ छात्रों में सामूहिक नकल की प्रवृति बढ़ी है, वहीं अध्यापक भी अपनी भूमिका का निर्वाह करने में असफल रहे हैं। कार्यसमिति ने दोषी व्यक्तियों को दंडित करने की माँग सरकार से की है।

कितने विद्यार्थी ?

1961-62 में देश में 49 विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत 1783 कालेज थे, जिसमें, विद्यार्थियों की संख्या 663661 थी जबकि 1977-78 में विश्वविद्यालयों की संख्या बढ़कर 105 हो गई है-इसके साथ ही 10 ऐसे संस्थान भी है जिनका दर्जा विश्वविद्यालयों के समान ही है। कालेजों की संख्या बढ़कर 4610 पहुँच चुकी है। विद्यार्थियों की संख्या भी बढ़कर 2564950 हो चुकी है। अभी तो आगे देखना है।

हस्पताल एवं शिक्षण-संस्थान संबन्धी

बिल के बारे में अध्यापक परिषद का मत है कि अध्यापक स्वतः प्रेरणा से अपने राष्ट्रीय दायित्व को सामने रखते हुए भले ही हड़ताल से दूर रहें किन्तु हड़ताल के अधिकार को छिनने न दें।

धर्म परिवर्तन और मोरार जी देसाई

प्रधान मन्त्री मोरार जी देसाई ने कहा कि धर्मार्थ कार्य और धर्म परिवर्तन दोनों अलग-अलग चीजें हैं और दोनों का कोई संबंध नहीं है। मदर टेरेसा के एक पत्र के उत्तर में श्री देसाई ने कहा है कि धर्मार्थ कार्य बिना धर्म परिवर्तन कराये भी सम्पन्न किए जा सकते हैं। लोक सभा में प्रस्तुत धार्मिक स्वातन्त्र्य विधेयक के सम्बन्ध में श्री देसाई ने कहा है कि यह विधेयक किसी की धार्मिक स्वतन्त्रता का हनन नहीं करेगा परन्तु गरीबों और अशिक्षितों को बिना किसी प्रलोभन के निर्भय होकर अपने धर्म के अनुसरण की सुरक्षा प्रदान करेगा। उन्होंने मदर टेरेसा को विधेयक के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलने की अपील की है और कहा है कि आदिवासियों को अफवाहों में न पड़ने और सचेत रहने की जरूरत है क्यों कि उनका संरक्षण केवल कानून के ही अधीन नहीं वरन् संविधान के सिद्धांत के अनुरूप है।

द्वारिका शारदा पीठ के शंकराचार्य स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ, पुरी के शंकराचार्य स्वामी निरंजन देव तीर्थ, तथा ज्योतिमठ के शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती ने संसद सदस्यों से धार्मिक स्वतन्त्रता विधेयक का समर्थन किये जाने का अनुरोध किया है।

वाराणसी में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ

की कार्य समिति के सदस्य एवं पूर्वी भारत के क्षेत्रीय प्रचारक श्री सुदर्शन ने मुसलमानों से अपील की है कि वे स्वार्थी राजनीतिज्ञों के प्रचार से गुमराह न हों। उन्होंने कहा कि मजहब बदल जाने से संस्कृति और राष्ट्रीयता नहीं बदलती। उन्होंने कहा कि संघ सभी धर्मों का सम्मान करता है। बाद में राम मन्दिर नाम से प्रसिद्ध संघ कार्यालय में मुसलमानों ने अपनी नमाज पढ़ी क्योंकि नमाज का समय हो गया था।

दिल्ली प्रदेश युवक कांग्रेस (ई) के अध्यक्ष प्रेम स्वरूप नैयर ने एक प्रेस कान्फेन्स में संजय गाँधी के फिर से राजनीति में उभरने पर चिन्ता व अफसोस प्रकट किया है। श्रीमति तारकेश्वरी सिन्हा (जिनके शेर मशहूर हैं) ने भी कहा है कि हम इन्दिरा गांधी को स्वीकार कर सकते हैं-लेकिन उसके कुत्तों को नहीं।

युवा जनता : किस्सा कुर्सी का ?

पिछले दिनों युवा जनता के भोपाल सम्मेलन में अध्यक्ष की कुर्सी के लिए दो टुकड़ों में बंटने के बाद आज दोनों पक्षों ने असली युवा जनता होने का दावा किया। मजे की बात यह है कि दोनों पक्षों के उद्देश्य लगभग समान है।

(नवभारत टाइम्स)

अम्बेडकर जयन्ती

विद्यार्थी परिषद् की बीकानेर इकाई द्वारा दिनांक 14 अप्रैल को डा० भीम राव अम्बेडकर जयन्ती समारोह स्थानीय आनंद निकेतन में सम्पन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता श्री सतीश कुमार बचलस प्रवक्ता टीचर ट्रेनिंग कालेज ने की, समारोह के मुख्य अतिथि श्री महेश शर्मा प्रान्तीय संगठन मंत्री राजस्थान थे। अपने उद्बोधन में श्री शर्मा ने बाबा साहब अम्बेडकर के जीवन के विभिन्न कटु संस्मरणों का उल्लेख करते हुए बताया कि हिन्दु समाज की अस्पृश्यता जैसी मिथ्या को बाबा साहब ने जिस दृष्टिकोण से देखा वह उनके भोगे हुए यथार्थ का स्वाभाविक प्रतिफल था। अन्त में श्री शर्मा ने कहा कि आज की जयन्ती की सार्थकता तभी होगी जब हम हिंदु समाज के इस कलंक को धोने के लिए कृत संकल्प होकर यहां से उठेंगे। मुकेश राजधानी ने बाबा साहब के जीवन इतिहास को काव्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया। अंत में नगर संगठन मंत्री श्री प्रदीप सिंह चौहान ने सभी उपस्थित श्रोताओं का धन्यवाद किया।

चार हजार छात्र : एक पुस्तक

भारत में चार हजार विद्यार्थियों पर एक वर्ष में केवल एक पुस्तक लिखी व प्रकाशित की

जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक संस्था यूनेस्को तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुसार दस करोड़ छात्रों के लिए केवल 20 हजार पुस्तकें लिखी व प्रकाशित की जाती है। परन्तु भारत विश्व का सातवां देश है। जिसमें सबसे अधिक पुस्तकें प्रकाशित की जाती है। विश्व में छपने वाली पुस्तकों में से प्रत्येक चौथी पुस्तक भारत में प्रकाशित होती है।

इदी अमीन नरभक्षी था ?

उगांडा के पदच्युत तानाशाह इदी अमीन का आदेश था कि श्वेतों की हत्या के बाद उनके कान काट कर तश्तरी में रखकर पेश किया जाया करे। जब किसी दम्पत्ति को पकड़ कर लाया जाता तो इदी अमीन तमाशा देखने के लिए खासतौर से आता था, दम्पत्ति से कहा जाता था कि वे यदि सरेआम सम्भोग करें तो उन्हें छोड़ दिया जायेगा। मरता क्या न करता वे बेचारे यही करते और इदी अमीन कर्णभेदी ठहाके लगाता था, इसके बाद दम्पत्ति को फिर जेल में ठूंस दिया जाता।

कुछ दिनों बाद दिल्ली में प्लस टू का

पहला बैच कालेज में दाखिला लेने पहुंचेगा। इस वर्ष 26 हजार विद्यार्थी प्लस टू की परीक्षा में बैठे हैं— दिल्ली विश्वविद्यालय में लगभग 22 हजार विद्यार्थी प्रवेश पाते रहे हैं। इस [illegible] के अधिक से अधिक 15 हजार [illegible] दाखिला लेंगे–इसलिए शायद दाखिले [illegible] प्रतिशत से 33 प्रतिशत पर यूनी-वर्सिटी आ जाए–क्योंकि सीटें काफी खाली रह जाएंगी वैसे अभी तक स्लेबस आदि तय नहीं हुए है। जबकि प्रो० वाइस चांसलर जिनकी अध्यक्षता में कमेटी बनी है समाचार है कि अप्रैल के अन्त तक पेरिस चले जाएंगे-विद्यार्थी का क्या बनेगा ?

आचार्य विनोबा भावे के अनुसार

गाय की रक्षा का सवाल धार्मिक नहीं, धर्म निरपेक्षता की दृष्टि से भी यह उचित है। आज गरीब किसानों के लिए जिनकी संख्या करोड़ों में है, गाय और बैल अत्यन्त उपयोगी है अगर किसान से गाय और बैल ही छिन जाएं तो वह खेती कैसे कर सकेगा।

अध्यापक हड़ताल क्यों हुई ?

डा० मोहन लाल श्रीवास्तव

इस वर्ष दिल्ली में 21 मार्च से 13 अप्रैल तक स्कूल शिक्षकों की हड़ताल हुई। 13 अप्रैल को केन्द्रीय शिक्षामंत्री की कथित अपील पर हड़ताल वापिस ली गई। अपीलकर्ताओं में श्री रवीन्द्र वर्मा के नाम को हड़ताली नेताओं ने उत्साह और आत्मीयता के भाव से उतना प्रचरित नहीं किया जितना कि श्री प्रतापचन्द्र चन्द्र के नाम को तात्पर्य उसका उनकी दृष्टि में कुछ भी हो परन्तु अन्तःकरण के अध्ययन के लिए पेचीदगी पैदा हुई। राजनीति अपना जन्म विभेद और स्वार्थ की भूमि में जब लेने लगती है तब उसका राष्ट्र और आत्मधर्म से सम्बन्ध छूट जाता है।

देश के अध्यापकों को सम्मानपूर्वक सेवा करने का अवसर मिलना चाहिए। उनके ज्ञानार्जन और अनुभव वितरण में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा नहीं पहुंचनी चाहिए। उन्हें राष्ट्र के प्रबुद्ध वर्ग के नाते आरक्षण मिलना चाहिए। वे राष्ट्र की आत्मा के साथ विश्वात्मा को अबाध रूप से मुखरित करते हुए लौकिक और पारलौकिक दृष्टि से मानव मात्र की सेवा करते रहें और पुनः घोषित हो कि "....स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्याम् सर्वे मानवाः" तो इन बातों से किसी का मत-भेद नहीं क्योंकि किसी भी प्रकार की शिक्षा हो उसमें अध्यापक सर्वथा अपेक्षित है।

परन्तु दिल्ली की इस हड़ताल ने 21-22 दिनों तक जो स्थिति पैदा की उसकी उपेक्षा हानिकारक होगी। परीक्षा से कुछेक दिनों पूर्व बातचीत की स्थिति को तिरस्कृत करके अध्यापकों के असंतोष को भड़काना और लाखों छात्रों के भविष्य की चिन्ता किए बिना अपने हठ को सर्वोपरि रखना न तो न्यायसंगत था और न धर्मसंगत। मस्तिष्क हिल जाता है उन कारणों को खोजते हुए जिन्होंने इस हड़ताल को जन्म दिया। यदि संस्था सम्मान, नेतृत्व प्रतिष्ठा, दिल्ली के भावी चुनाव में राजनीति जीवी नेताओं की लिप्सा, जातीय दुर्भावना, साम्यवादी और इन्दिरा भक्तों की साठ-गांठ इस हड़ताल के पीछे न हो तो हड़ताल होती नहीं।

जनता पार्टी के निर्माण में जो लोग बहु-दलीय एकता की अनुपयुक्तता की चर्चा करते रहते हैं और इसी दृष्टि से अपने राजनैतिक परिवेश में प्रत्येक स्तर पर सक्रिय हैं वे भूल जाते हैं कि उन्होंने ही अपने-अपने पूर्व दलों में कितने दंगल किए हैं। नाम लेते हैं सिद्धांतों का, कार्य करते हैं अपने-अपने हितों का।

दिल्ली भारत की राजधानी है। सभी स्तर के नेताओं की यहाँ भीड़ रहती है। यदि हड़ताली शिक्षकों के नेता शांतिपूर्ण वार्ता का मार्ग अपनाते और अपने निजी स्वार्थ को तिलांजलि देकर अध्यापकों के वास्तविक हितों की चिन्ता रखते तो 21 दिनों तक दिल्ली के अबोध छात्र अनाथों की भांति सड़कों पर न घूमते। अध्यापकों के बारे में उनके मन में जो चिह्न उभरा है, उसकी भावी प्रतिक्रियाओं के विषय में क्या हड़ताली नेताओं ने सोचा है।

क्या छात्र नहीं जानते कि कक्षाओं में पढ़ाई न करके घरों पर ट्यूशन के लिए वे बुलवाए जाते हैं ? क्या अध्यापकों के दोहरे रोजगार से परिचित नहीं हैं ? क्या वे नहीं जानते कि दिल्ली के स्कूलों में ऐसे अगणित अध्यापक हैं जिन्होंने अपनी शैक्षणिक योग्यता का प्रमाणपत्र ऐसे-वैसे तरीकों से जमाकरवा-कर उच्च पद प्राप्त किए हैं। क्या ताश, शत-रंज खेलते हुए धूम्रपान और कई प्रकार के पान करके घूमते हुए अध्यापकों को उन्होंने देखा नहीं ? वे नहीं समझते कि वे ही राष्ट्रनिर्माता हैं, और इस प्रकार कोई हो भी नहीं सकता।

ज्वाइंट कौंसिल स्कूलों में (इन्दिरा कांग्रेसी औरसाम्यवादी अध्यापक) छाती ठोंक कर कह रहे हैं कि चलाओ प्रशासन कैसे चलाते हो। जब तक इन्दिरा सत्तारूढ़ नहीं होती हम चैन से नहीं बैठेंगे। ऐसी स्थिति में हड़ताल की पड़ताल जरूरी है।

इसलिए जनमानस यही पूछता है कि बच्चों की जिंदगी के साथ यह खिलवाड़ कब तक चलेगा ? परीक्षाओं के दिनों में प्रशासन को ब्लैकमेल करने की साजिश का अन्त कब होगा ? विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओं की सीमाओं को तोड़कर अध्यापकों की समस्या का हल खोजना चाहिए।

क्रांति की दिशा (पृष्ठ १२ का शेष)

...को हमने सही दिशा में प्रवाहित किया तो वह काम में आ सकता है और वही पानी अनियंत्रित बहता गया तो बाढ़ की विनाश लीला ही देखने को मिलती है। छोटे-छोटे लक्ष्य तथा गरीबी हटाओ के लक्ष्य रखे जाते हैं। इतने छोटे लक्ष्यों से त्याग और बलिदान की प्रेरणा कैसे मिलेगी? बड़े लक्ष्य हों तो मनुष्य बड़ा काम करने के लिये प्रस्तुत होता है।

किस्सा एक भिखारी का

मेरे एक मित्र थे, वे किस्सा सुनाते थे। एक दिन वे स्टेशन पर जल्दी पहुंच गये। गाड़ी घण्टा भर लेट थी, इसलिये प्लेटफार्म पर टहलने लगे। उन्होंने देखा कि एक भिखारी बैठा हुआ खा रहा है। रोटी का टुकड़ा तोड़ता है और रोटी पर रगड़ता है और फिर से खाता है। उन्हें लगा रोटी पर कोई सब्जी या अन्य कोई पदार्थ रखा होगा जिसके साथ वह रोटी खा रहा होगा, किन्तु निकट आकर देखने से पता चला कि रोटी पर न तो सब्जी है न और कोई पदार्थ। वह सूखी रोटी का टुकड़ा उस रोटी पर रगड़ कर खा रहा है। अतः उन्होंने उत्सुकता वश उससे पूछा —'क्यों भाई यह क्या कर रहे हो?' उस भिखारी ने जवाब दिया, क्या करूं बाबूजी सूखी रोटी है, खाने में अच्छी नहीं लगती इसलिए मैं कल्पना कर रहा हूं कि उस पर नमक रखा है, उस नमक को रगड़-रगड़ कर खा रहा हूं।" तो हमारे मित्र ने कहा, "हे भले आदमी आज तो तू दरिद्र है ही, परन्तु तू हमेशा ही दरिद्र बना रहेगा।" उसने कहा बाबूजी ऐसा क्यों कहते हो? ऐसा अभिशाप क्यों दे रहे हो? तो मित्र ने कहा-"तेरे पास रोटी के सिवा कुछ नहीं। तू तो कल्पना ही कर रहा था पर तेरी कल्पना भी आखिर कहां तक गयी तो नमक तक। रबड़ी के साथ, मलाई के साथ मैं रोटी खा रहा हूं, यह कल्पना तू नहीं कर सकता। यही स्थिति भारत की भी है। कैसी कल्पना की गरीब हटाओ मानो जीवन का यही सब से बड़ा लक्ष्य हो।

महान लक्ष्य हो

इस देश को महान बनायेंगे विश्व का सबसे बड़ा राष्ट्र बनायेंगे ऐसी कोई महान कल्पना जीवनोद्देश्य जब तक हम अपने युवकों के समक्ष नहीं रखेंगे तब तक इस श्रेष्ठ महान उद्देश्य के लिए हम प्रस्तुत नहीं होंगे। इसी लिए आज लोग कहते हैं कि स्वतंत्रता के समय जो लोग तेजस्वी के साथ सामने थे, अपने जीवन को दगा देते थे आज नहीं मिलते किन्तु संघ को मिलते हैं। आज भी सैकड़ों इंजीनियर्स, एम० ए०, एम० एस० सी० फर्स्ट क्लास लोग संघ का मिलते हैं?

इसलिए कि हम एक महान लक्ष्य उनके सामने रखते हैं "परमंवैभव नेतुमेतत्स्व राष्ट्र" इसको फिर से वैभवशाली बनायेंगे। उसके लिए जो क्षमता योग्यता की आवश्यकता है उसे प्राप्त कराने हेतु प्रतिदिन की शाखा है। युवकों में से ऐसे लोग आगे आएं अपने इस उद्देश्य के साथ नाता जोड़ें। उनकी आँखों में यह स्वप्न पले कि भारत को विश्व का सबसे श्रेष्ठ राष्ट्र बनाना है, उसको बनाने वाला मैं एक छोटा तन्तु हूं। मैं अपने आपको सब प्रकार की योग्यता से सम्पन्न बनाकर इस देश का ऐसा चित्र प्रस्तुत करूंगा ऐसी जिनके अन्दर आकांक्षा दिखेगी तो वह भी साधारण व्यक्ति (नरेन्द्र) से स्वामी विवेकानन्द बन सकेगा। हम से हरेक के अन्दर वह क्षमता है। हम भी तो आखिर उन्हीं पूर्वजों की संतान हैं जीवन वह लक्ष्य और उद्देश्य मिले और अनुरूप ढालने के लिए एक व्यवस्था मिले तो हम देखेंगे कि एक नहीं हजार-2 लाख-लाख कार्यकर्ता तैयार होंगे और ऐसे कार्यकर्ता, समाज का सहयोग तथा महान नेता तीनों के संयोग से इस त्रिवेणी से राष्ट्र के सारे पाप धुल जाएंगे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ यही कार्य कर रहा है। संघ की शाखा एक प्रकार से वह विद्यालय है, जहां ऐसे सब गुणों से सम्पन्न राष्ट्र की सेवा में समर्पित कार्यकर्ता तैयार होते हैं।

...शिक्षा नीति

...का शेष

...आधार पर तैयार नहीं किया गया है। इसके अतिरिक्त, प्रचलित पद्धति में समाज के उन वर्गों की विशिष्ट सांस्कृतिक उपलब्धियों को पूर्णतया उपयोग में नहीं लाया गया है जो सामाजिक तथा आर्थिक तौर पर तो पिछड़े हैं परन्तु सांस्कृतिक तौर पर समृद्ध हैं। अब यह प्रस्ताव है कि इन संसाधनों का लाभ उठाया जाए और उन्हें औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षा पद्धति में मिलाया जाए।

९.१ यह भी आवश्यक है कि सांस्कृतिक विरासत के परिरक्षण तथा इसे सामान्य शिक्षा धारा में जोड़ने के उद्देश्य से पारम्परिक एवं समसामयिक दोनों किस्म की सांस्कृतिक संस्थाओं को सशक्त बनाया जाए। अब तक शिक्षा पद्धति को सांस्कृतिक संस्थाओं से दूर रखा गया है, और अब इन दोनों को ही मिला देने का प्रस्ताव है ताकि वे शिक्षा की एक विशिष्ट भारतीय पद्धति में अपना योगदान कर सकें।

१० शारीरिक शिक्षा

१०.१ शारीरिक शिक्षा, खेल-कूद जिनमें ग्रामीण खेल, देशी खेल तथा योगाभ्यास भी शामिल है, सभी शिक्षा का एक अभिन्न अंग बन जाएंगे और इन्हें विभिन्न स्तरों पर देश की शिक्षा पद्धति से जोड़ा जाएगा। **प्रारंभिक शिक्षा की भांति शारीरिक शिक्षा और** खेलों को भी सर्वसुलभ बनाया जाना चाहिए। लड़कों और लड़कियों में से प्रतिभाशाली बच्चों को खोज निकालने का प्रबंध किया जाएगा और उनकी प्रतिभा को निखारने के लिए उन्हें सुविधाएं प्रदान की जाएंगी ताकि वे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय खेलों में श्रेष्ठता प्राप्त कर सकें।

११ भाषाएं

११.१ प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगा और तत्पश्चात् विश्वविद्यालय स्तर सहित क्षेत्रीय भाषा होगी। छात्रों को अंग्रेजी अथवा किसी विदेशी भाषा का ज्ञान भी होना चाहिए ताकि वे अपने तथा अन्य क्षेत्रों से संबन्धित विशेष और विश्व में बढ़ती हुई जानकारी का ज्ञान प्राप्त कर सकें। माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र लागू किया जाएगा। इसमें हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा अधिमानतः दक्षिणी भाषाओं में से कोई एक भाषा और अंग्रेजी अहिन्दी भाषी राज्यों में क्षेत्रीय भाषा व अंग्रेजी सहित हिन्दी का अध्ययन शामिल है।

११.२ भाषाओं के शिक्षण की तकनीकों में परिवर्तन और सुधार करने का प्रयास

किया जाएगा।

११.३ भारतीय भाषाओं और साहित्य के विकास के प्रयत्न जारी रखे जायेंगे और उन्हें मजबूत किया जाएगा।

११.४ संस्कृत उस एकता का प्रतीक है जिसमें हमारी सांस्कृतिक विविधताएं परिलक्षित हैं। हमारी संस्कृति की प्रोन्नति और भारतीय भाषाओं के विकास में संस्कृत की भूमिका महत्वपूर्ण है। **संस्कृत के अध्ययन को लोकप्रिय बनाने का प्रयास तीव्रता से किए जायेंगे।**

११.५ संपर्क भाषा के रूप में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार करते हुए हिन्दी के विकास को प्रोन्नत करने और इसके शिक्षण को व्यापक बनाने के कार्यक्रमों को मजबूत किया जाएगा।

११.६ उर्दू और सिन्धी के अध्ययन को और उचित प्रोत्साहन दिया जायेगा।

१२ परीक्षा सुधार

१२.१ परीक्षाएं विशेषकर सार्वजनिक परीक्षाएं, सीखने की गतिविधियों पर बुरा प्रभाव डालती हैं। अतः उनका गठन इसप्रकार किया जाना चाहिए कि वे अधिक विश्वसनीय, वैध और उद्देश्यपूर्ण हो सकें। मूल्यांकन से शिक्षक को उसके शिक्षण के सामर्थ्य का पता लगाना चाहिए और इसके साथ-साथ छात्र को भी उसके अपने प्रयत्नों के परिणाम मालूम हो जाने चाहिए। मूल्यांकन को ऐसा सबल उपकरण बन जाना चाहिए जिससे पाठ्यक्रमों की विषय-वस्तु एवं शिक्षण प्रणालियों सहित अध्यापन और अध्ययन प्रक्रियाओं में सुधार किया जा सके।

१२.२ अवर-स्नातक स्तर के अन्त तक शिक्षा के पूरे पाठ्यक्रम के लिये तीन से अधिक सार्वजनिक परीक्षाएं आयोजित करने की आवश्यकता नहीं। ये १०वें स्तर, १२वें स्तर तथा अवर-स्नातक स्तर के अन्त में हो सकती है। प्रारम्भिक स्तर के अन्त में मुख्य रूप से संस्थाओं में स्तर बनाए रखने के उद्देश्य से एक स्कूल अथवा जिला परीक्षा हो सकती है।

१२.३ अन्य सभी परीक्षाएं आन्तरिक हो सकती हैं परन्तु विद्यार्थियों को प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए नियत-कालिक मूल्यांकन होने चाहिए। उन विद्यार्थियों पर जो पर्याप्त प्रगति नहीं दिखाते हैं तथा विशेष रूप से उनके लिए जो समाज के कमजोर वर्गों के हैं, विशेष ध्यान देने के उद्देश्य से निरन्तर सतत मूल्यांकन होना चाहिए तथा प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति तथा विकास के मूल्यांकन हेतु एक पद्धति विकसित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

१३. पुस्तकों का उत्पादन

१३.१ शिक्षा के सभी स्तरों पर पाठ्-पुस्तकों को उच्च कोटि में सुधार तथा उचित कीमतों पर उन्हें विद्यार्थियों को उपलब्ध कराने के प्रयत्न किए जाएंगे। माध्यम परिवर्तन को सुफल बनाने के लिए क्षेत्रीयभाषाओं में पुस्तकें तथा अन्य सन्दर्भ सामग्री तैयार करने के काम में राज्यों तथा विश्वविद्यालयों की सहायता की जाएगी।

१४. शैक्षिक अवसरों को समान बनाना

१४.१ यद्यपि हमारे देश में शिक्षा का सभी क्षेत्रों में पर्याप्त विस्तार हुआ है, फिर भी असन्तुलन तथा असमताएं देखी जाती हैं। लड़कियों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों भूमिहीन श्रमिकों, पिछड़े वर्गों तथा शहरी गंदी बस्तियों के गरीबों को शिक्षा अन्यों की तुलना में आमतौर से पीछे हैं। इन मामलों में समस्याओं का पता लगाने तथा ऐसे उपयुक्त कार्यक्रम बनाने के विशेष प्रयत्न किए जाएंगे जिनसे ये वर्ग शिक्षा के लाभ उठा सकें।

१४.२ शिक्षा के सभी स्तरों पर राज्य तथा राष्ट्रीय स्तरों पर इन कार्यक्रमों का घनिष्ट अनुसरण आरम्भ किया जायेगा तथा उद्देश्य यह होगा कि अगले दस वर्षों में ये वर्ग जनसंख्या के अन्य वर्गों द्वारा प्राप्त किये गए स्तरों तक पहुंच सकें।

१४.३ उन बच्चों को जो प्रथम पीढ़ी के छात्र हैं; स्कूल के लिए तैयार करने में पूर्व-स्कूली शिक्षा की व्यवस्था शायद अत्याधिक लाभप्रद सिद्ध हो। पूर्व-स्कूली शिक्षा, स्वैच्छिक संगठनों तथा स्थानीय निकायों द्वारा उपलब्ध किये गये परम्परागत प्रायः संसाधनों के साथ-साथ घरों तथा अन्य सुविधाओं के माध्यम से प्रदान करनी होगी।

१४.४ योग्यता-एवं-साधनों पर आधारित छात्रवृत्तियों और शिक्षावृत्तियों को शिक्षा के के सभी स्तरों पर बढ़ाया जाना चाहिए और ग्रामीण पिछड़े क्षेत्रों और कमजोर वर्गों के लिए उनका निर्धारण किया जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि जनसंख्या के कमजोर वर्गों के प्रतिभावान छात्रों को शैक्षिक प्रगति की ओर बढ़ने में सहायता मिल सके।

१४.५ पब्लिक स्कूलों जैसे कुछ स्कूल बहुत शिक्षा शुल्क लेते हैं और वे सार्वजनिक शिक्षा पद्धति से बाहर रहते हैं। जबकि इन संस्थाओं में से कुछ सीधे ही अथवा राज्यों के माध्यम से संचालित छात्रवृत्तियों की किसी प्रणाली के जरिए कमजोर वर्गों के छात्रों के दाखिले की व्यवस्था करती हैं फिर भी कुल मिलाकर इन संस्थाओं तक केवल समाज के विशेष अधिकार प्राप्त और सम्पन्न व्यक्तियों को ही पहुंचा पाती हैं। इन संस्थाओं को पड़ोस पद्धति सहित शिक्षा को सामान्य स्कूल पद्धति में मिला दिया जाना चाहिए। इन्हें भी उन्हीं नियमों और विनियमों के क्षेत्र में लाया जाना चाहिए जो सार्वजनिक शिक्षा पद्धति के लिए लागू होते हैं। ऐसा करते समय अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित संस्थाओं के अधिकार को उचित मान्यता दी जाएगी।

१४.६ देश में कुछ राज्य अन्य राज्यों की अपेक्षा शैक्षिक विकास की दृष्टि से अधिक पिछड़े हुए हैं। केन्द्र और इन राज्यों को कुछ विशेष प्रयत्न करने होंगे ताकि उनको अगले दस वर्षों के दौरान शिक्षा विकास के मामले में अधिक उन्नत राज्यों के बराबर लाया जा सके विशेषकर शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के संबंध में यह देखा गया है कि उन्नत राज्यों में भी शिक्षा का विकास एक समान नहीं है। अतः अगली योजना अवधि के दौरान सुदृढ़ अनुश्रवण आरम्भ करना होगा और यह सुनिश्चित करने के लिए कि तुलनात्मक रूप से सभी पिछड़े क्षेत्रों को, उनके स्तर ऊँचा उठाने में सहायता की जा सके, क्षेत्र-योजना पर बल दिया जाएगा।

१४.७ जितने भी विकलांग बच्चों को हो सके शैक्षिक अवसर प्रदान करने का हर